103HN21

by Cde Anu

Submission date: 18-Jul-2025 11:52PM (UTC+0530)
Submission ID: 2716910732
File name: 103HN21.pdf (2.03M)
Word count: 38374
Character count: 82303

OLD AND MEDIVAL POETRY

M.A. Hindi, Semester-I, Paper-III

Complied by

Dr.C.V.RAMAKUMAR
Former Assistant Professor
Dept. of Hindi
Tamilnadu Central University
Tamilnadu

Director

Dr.Nagaraju Battu

M.H.R.M., M.B.A., L.L.M., M.A. (Psy), M.A., (Soc), M.Ed., M.Phil., Ph.D.

Centre for Distance Education

Acharya Nagarjuna University

Nagarjuna Nagar-522510

Phone No.0863-2346208, 0863-2346222, Cell No.9848477441

0863-2346259 (Study Material)

Website: www.anucde.info

e-mail: anucdedirector@gmail.com

M.A. (Hindi): Old and Medival Poetry

First Edition:2021

Reprint : 2022

No. of Copies

© Acharya Nagarjuna University

This book is exclusively prepared for the use of students of M.A. (Hindi) Centre for Distance Education, Acharya Nagarjuna University and this book is mean for limited circulation only

Published by

Dr.Nagaraju Battu

Director

Centre for Distance Education

Acharya Nagarjuna University

Nagarjuna Nagar-522510

Printed at

FOREWORD

Since its establishment in 1976, Acharya Nagarjuna University has been forging ahead in the path of progress and dynamism, offering a variety of courses and research contributions. I am extremely happy that by gaining 'A' grade from the NAAC in the year 2016, Acharya Nagarjuna University is offering educational opportunities at the UG, PG levels apart from research degrees to students from over 443 affiliated colleges spread over the two districts of Guntur and Prakasam.

The University has also started the Centre for Distance Education in 2003-04 with the aim of taking higher education to the door step of all the sectors of the society. The centre will be a great help to those who cannot join in colleges, those who cannot afford the exorbitant fees as regular students, and even to housewives desirous of pursuing higher studies. Acharya Nagarjuna University has started offering B.A., and B.Com courses at the Degree level and M.A., M.Com., M.Sc., M.B.A., and L.L.M., courses at the PG level from the academic year 2003-2004 onwards.

To facilitate easier understanding by students studying through the distance mode, these self-instruction materials have been prepared by eminent and experienced teachers. The lessons have been drafted with great care and expertise in the stipulated time by these teachers. Constructive ideas and scholarly suggestions are welcome from students and teachers involved respectively. Such ideas will be incorporated for the greater efficacy of this distance mode of education. For clarification of doubts and feedback, weekly classes and contact classes will be arranged at the UG and PG levels respectively.

It is my aim that students getting higher education through the Centre for Distance Education should improve their qualification, have better employment opportunities and in turn be part of country's progress. It is my fond desire that in the years to come, the Centre for Distance Education will go from strength to strength in the form of new courses and by catering to larger number of people. My congratulations to all the Directors, Academic Coordinators, Editors and Lesson- writers of the Centre who have helped in these endeavours.

Prof. P. Raja Sekhar
Vice-Chancellor
Acharya Nagarjuna University

SEMESTER - I

PAPER - III : OLD AND MEDIVAL POETRY

103HN21 - प्राचीन और मध्ययुगीन हिन्दी कविता

<u>पाठ्य पुस्तकें</u> :

1. अभिनव राष्ट्रभाषा पद्य संग्रह - संपादक - डॉ. वासुदेव नन्दन प्रसाद, अभिनव-भारती,42 - सम्मेलन मार्ग इलाहाबाद - 211 003, कबीरदास - साखी, सबद, जायसी-मानसरोदक खण्ड मात्र ।
2. पृथ्वीराज रासो (पद्मावती समय मात्र) - डॉ. हरिहरनाथ टेडन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा - 2
3. सूरदास - भ्रमरगीत सार (1-40 पद) संपादक - रामचन्द्र शुक्ल नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।
4. तुलसीदास - ''तुलसी संचयन'' रामचरित मानसः (बालकांड मात्र) - संपादक डॉ. वी.पी. सिंह, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा - 2 ।
5. ''रीतिकाव्य संग्रह'' - संपादक डॉ. विजयपाल सिंह, लोकभारती प्रकाशन मंदिर 15- ए गांधी रोड, इलाहाबाद । बिहारी 1-80 दोहा, धनानंद -1-20 छन्द ।

<u>पाठ्यांश</u>

<u>परंपरा और व्याख्या</u> :

1. <u>मध्ययुगीन कविता - पृष्ठभूमि</u>: भक्ति आन्दोलन और लोक जागरण, भक्ति काव्यः दर्शन और संप्रदाय, भक्ति काव्य, सामाजिक चेतना और मानवीय संदर्भ, मध्यकालीन दरबारी संस्कृति और रीतिकाव्य ।
2. <u>निर्गुण भक्ति काव्य</u>: कबीर और जायसी, कबीर काव्य प्रतिभा, भक्ति दर्शन, योगः रहस्यवाद, सामाजिक चेतना, अभिव्यंजना कौशल । जायसी : काव्य प्रतिभा, दर्शन, सूफी सिद्धांत और रहस्यवाद, पद्मावत में भारतीय संस्कृति तथा लोक जीवन के रूप, अभिव्यंजना कौशल ।
3. <u>सगुण भक्ति काव्य</u>: सूरदासः काव्य प्रतिभा, मौलिक प्रसंगों की उद्भावना, शुद्धाद्वैतः पुष्टिमार्ग और सूरदास, ब्रज की लोक संस्कृति, प्रतिपाद्य वात्सल्य, भक्ति और श्रृंगार व रस राजत्व, अभिव्यंजना कौशल । तुलसीदासः काव्य प्रतिभा, दर्शन और भक्ति भावना, सांस्कृतिक चेतना और युग संदर्भ, लोक नायकत्व, प्रबंध पटुता, अभिव्यंजना कौशल ।
4. <u>रीतिकालीन काव्य</u> : बिहारी : काव्य प्रतिभा, समास, शक्ति और समाहार शक्ति, मुक्तक परंपरा और बिहारी श्रृंगारिकता, अभिव्यंजना कौशल । घनानंद : काव्य प्रतिभा, स्वच्छंद चेतना, प्रेमानुभूति, विप्रलंभ श्रृंगार, अभिव्यंजना कौशल ।

सहायक ग्रंथ :

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
2. हिन्दी साहित्य की भूमिका - हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

3. रीतिकाल की भूमिका - डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।
4. हिन्दी साहित्य में निर्गुण संप्रदाय - पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ ।
5. कबीर-हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली ।
6. जायसी - रामपूजन तिवारी, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस ।
7. जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
8. गोस्वामी तुलसीदास - रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
9. तुलसी काव्य मीमांसा- उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली ।
10. सूरदास - रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
11. सूरदास - नन्ददुलारे वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
12. सूर साहित्य - हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
13. बिहारी - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, विद्या मंदिर प्रेस, बनारस ।
14. बिहारी का नया मूल्यांकन - बच्चन सिंह, हिन्दी प्रचार संस्थान, वाराणसी ।
15. घनानंद कविता - भूमिकाः विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, सरस्वती मंदिर, वाराणसी ।
16. घनानदं और स्वच्छंद काव्य धारा - मनोहर लाल गौड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
17. रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना - डॉ. बच्चन सिंह, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
18. भक्ति काव्य और लोक जीवन - शिवकुमार मिश्र, पीपुल्स लिटरेसी 517 मटिया महल, दिल्ली - 110 0061
19. भक्ति काव्य स्वरूप और संवेदना - राम नारायण शुक्ल, संजय बुक सेंटर, वरणासी ।

पाठ्यांश

परंपरा और व्याख्या :

1. मध्ययुगीन कविता पृष्ठभूमिः भक्ति आन्दोलन और लोक जागरण, भक्ति काव्यः दर्शन और संप्रदाय, भक्ति काव्य, सामाजिक चेतना और मानवीय संदर्भ, मध्यकालीन दरबारी संस्कृति और रीतिकाव्य ।

2. निर्गुण भक्ति काव्यः कबीर और जायसी, कबीर काव्य प्रतिभा, भक्ति दर्शन, योगः रहस्यवाद, सामाजिक चेतना, अभिव्यंजना कौशल । जायसी : काव्य प्रतिभा, दर्शन, सूफी सिद्धांत और रहस्यवाद, पद्मावत में भारतीय संस्कृति तथा लोक जीवन के रूप, अभिव्यंजना कौशल ।

3. सगुण भक्ति काव्यः सूरदासः काव्य प्रतिभा, मौलिक प्रसंगों की उद्भावना, शुद्धाद्वैतः पुष्टिमार्ग और सूरदास, ब्रज की लोक संस्कृति, प्रतिपाद्य वात्सल्य, भक्ति और श्रृंगार व रस राजत्व, अभिव्यंजना कौशल। तुलसीदासः काव्य प्रतिभा, दर्शन और भक्ति भावना, सांस्कृतिक चेतना और युग संदर्भ, लोक नायकत्व, प्रबंध पटुता, अभिव्यंजना कौशल ।

4. रीतिकालीन काव्य : बिहारी : काव्य प्रतिभा, समास, शक्ति और समाहार शक्ति, मुक्तक परंपरा और बिहारी श्रृंगारिकता, अभिव्यंजना कौशल। घनानंद काव्य प्रतिभा, स्वच्छंद चेतना, प्रेमानुभूति, विप्रलंभ श्रृंगार, अभिव्यंजना कौशल।

पाठ्य पुस्तकें :

1. **अभिनव राष्ट्रभाषा पद्य संग्रह** - संपादक - डॉ. वासुदेव नन्दन प्रसाद, अभिनव-भारती,42- सम्मेलन मार्ग इलाहाबाद-211003, कबीरदास-साखी, सबद, जायसी-मानसरोदक खण्ड मात्र।

2. **पृथ्वीराज रासो (पद्मावती समय मात्र)** - डॉ. हरिहरनाथ टेडन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2.

3. **सूरदास भ्रमरगीत सार (1-40 पद)** संपादक-रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वारणासी।

4. **तुलसीदास "तुलसी संचयन" रामचरित मानसः (बालकांड मात्र)** - संपादक डॉ. वी.पी. सिंह, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2|

5. '**रीतिकाव्य संग्रह"** -संपादक डॉ. विजयपाल सिंह, लोकभारती प्रकाशन मंदिर 15-ए गांधी रोड, इलाहाबाद। बिहारी 1-80 दोहा, धनानंद 1-20 छन्द।

अतिरित विषय केलिए यह लिंक दबाईये -
https://www.thehindiacademy.com/p/blog-page_16.html

प्र.1. ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रवर्तक कबीरदास की विचारधारा का अवलोकन कीजिए।

रूपरेखा :

1. प्रस्तावना
2. निर्गुण ब्रह्म ती उपासना
3. अवतारवाद का खण्डन
4. गुरु का महत्व
5. जाति - पांत का खण्डन
6. बाह्याडंबरों का खण्डन
7. रहस्यवाद
8. नाम स्मरण
9. अनुभूति की तीव्रता
10. समाज सुधार
11. दार्शनिक विचारधारा
12. भाषा - शैली
13. उपसंहार

प्रस्तावना :

हिन्दी साहित्य क्षेत्र के निर्गुण भक्ति शाखा के प्रधान कवि कबीर माने जाते हैं। वे ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रवर्तक हैं। वे एकेश्वरवादी हैं और उनका एकेश्वरवाद मुसलमानों के एकेश्वरवाद से भिन्न है। वह अलख तथा अगोचर है। कबीर भक्त, ज्ञानी समाज सुधारक, रहस्यवादी, साधक, जाति-पाँत का खण्डन करने वाला, विचारक, मूर्ति पूजा का खण्डन करने वाला आदि के रूप में हमारे सामने आते हैं। ध्यान से देखने पर कबीर में वैष्णवों की भक्ति, जैनों का अहिंसावाद और बौद्धों का बुद्धिवाद दिखाई देते हैं। कबीर बाह्याडंबरों का खण्डन करके उपनिषदों का अद्वैतवाद प्रतिपादित करते हैं। वे अनपढ़ थे। लेकिन साधु-संतों की संगति गुरु रामानन्द की कृपा, सतत प्राकृतिक-सामाजिक निरीक्षण, दार्शनिक चिन्तन, आडंबर रहति जीवन, राम भक्ति में तल्लीन होना आदि के कारण उनकी वाणी कविता की लहरों में पल्लवित होती है। यह एक बडी चर्चा का विषय है कि - कबीर कवि थे या भक्त थे या दर्शनिक थे। लेकिन हमारे विचार में कबीर इन तीनों का समन्वय रूप है। इन को अलग अलग दृष्टियों से देखना कठिन है।

कबीर समाज में विविध विषयों का अनुशीलन करते जाते थे। उनके शिष्य भी विविध प्रकार के प्रश्न करते थे। समय समय पर विचारधारा में पल्लवित हुई उनकी वाणी को शिष्यों ने ग्रन्थ का रूप दिया है जो बीजक नाम से विख्यात है। इस के तीन भाग हैं, साखी, सबद तथा रमैनी। वे नीराकार राम के अनन्य भक्त हैं। कबीर उस समय पंजाब से लेकर बंगाल तक सारे हिन्दुस्तान में विचरते थे। साधु-संतों के शब्द उनके साहित्य में प्रचलित होने के कारण उनकी भाषा सधुक्कडी कहलाती है और विवधि भाषाओं का मिश्रम होने के कारण खिचडी कहलाती है। कबीर जो भी भाव या विचार उनके मन में आते थे, निर्भीकता के साथ डटकर समाज के सामने प्रस्तुत करते थे। -

2. निर्गुण बह्म की उपासना :

संत कबीर राम के अनन्य भक्त होने के कारण वे निर्गुण ईश्वर में विश्वास रखते हैं। वे कहते हैं -

"निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई।

हिन्दु तुरक न कोई"।।

उनके राम निराकार थे। वे दशारथनन्दन राम को नहीं मनते थे।

"दशरथ सुत का लोक बखाना

राम नाम का मरम है आना"

वे राम के बारे में इस प्रकार कहते हैं -

"न मैं मंदिर न मैं मसजिद

न काबे कैलास में

वे कहते हैं कि निर्गुण राम हर जीव की साँसों में रहते हैं।

3. अवतारवाद का खण्डन:

संत कबीर निर्गुण परब्रह्म के उपासक थे। वे अवतारवाद का डटकर खण्डन करते थे। अवतार के बहाने परमात्मा को जन्म - मरण के बन्धनों में डालना वे नहीं चाहते थे। इसलिए कबीर अवतार वाद का खण्डन करते हैं।

4. गुरु का महत्त्व:

संत कबीर गुरु को भगवान से भी बढ़कर मानते हैं क्यों कि गुरु ज्ञान प्रदाता है। गुरु के द्‍वारा ही हम भगवान को जान सकते हैं। इसलिए कबीर कहते हैं कि - सारी पृथ्वी को कागज बनौकर, सारे समुद्रों के पानी को स्याही बनाकर और सारे वृक्षों को कलमें बनाकर लिखने पर भी गुरु की महत्ता पूर्णरूप से नहीं लिख पाते।

धरती सब कागद करौं लेखिनि सब बनराइ।

सात समंद की मसि करौं, तऊ हरि गुण लिख्या न जाइ।।

इसलिए वे कहते है -

“गुरु गोविन्द दोऊ खडे काके लागू पाय।

बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय'।।"

5. जाति - पांत का खण्डन :

परमात्मा एक ही है। सारे जीव उसी के बनाये हुए पुतले हैं। जाति-पान्त मानव निर्मित हैं। जाति से संसार को कोई लाभ नहीं। लाभ होता है ज्ञान से। इसलिए कबीर कहते हैं -

"जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान

मोल करो तलवार का, पडा रहने दो म्यान"

6. बाहयाडंबरों का खण्डन :

धर्म के नाम पर होनेवाले व्रत, तीर्थ, रोजा, नमाज, मूर्ति पूजा आदि का खण्डन कबीर ने कटु किया है। समाज में लोग दया तथा करुणा के बारे में चर्चा करते हैं। लेकिन सच्चा दयावान कहीं भी दिखाई नहीं देता। बकरी कहीं जंगल में जाकर घास -

पत्ते खा लेती है, मानव उसकी खाल निकाल देता है और खा लेता है। फिर, मानव को कौन खाये?

"बकरी पाती खात है ताकि खाई खाल।

जे जन बकरी खात है, तिन को कौन हवाल।।"

कंकड और पत्थर जोडकर मसजित बना देते हैं। मुल्ला उस पर चढ़कर ऐसे तनाव के साथ पुकारता है मानो अल्लाह बहरा हुआ है। इसी प्रकार मंदिर में पत्थर की मूर्ति रखकर पूजा करनेवाले भी कबीर से छूटे नहीं।

"कंकर पत्थर जोरि के मसजिद लई बनाय।

उसपर चढ़ी मुल्ला बांग दे बहिरा हुआ खुदाय।।"

"पाहन पूजे हरि मिले मैं, पूज़ू पहार।

ताते से यह चाकी भली, पीस खाय संसार।।"

7. रहस्यवाद :

संत कबीर महान साधक थे। वे सदा आत्मानुभूति में विचरते थे। वे हठयोग की साधना करते थे। उनके साहित्य में नाड़ी व्यवस्था की चर्चा होती थी। अपने पदों में और दोहों में वे इस पिंगला और सुशुम्ना की चर्चा करते जाते थे। यह सारा संसार ब्रह्मय है। ब्रह्म से जीव आता है, और फिर ब्रह्म में ही वह तीन हरे जाता है। इसी विषय को दार्शनिक कबीर प्रतीकात्मक विधान में प्रस्तुत करते हैं।

"जल में कुंभ कुंभ में जल है, भीतर बाहर पानी।

फूटा कुंभ जल जलहि समाना यह तथ्य कहियो ग्यानि"।।

8. नाम स्मरण :

कबीरदास सदा निराकार राम का स्मरण करते थे। भगवान की भक्ति प्रधान है। भगवान के सामने सब कुछ समर्पित करना है। अभिमान को त्याग कर भगवान का स्मरण करे। विविध पुस्तकें पढ़ने से कोई लाभ नहीं।

8

"पोथी पदि पदि जग मुआ पंडित भया न कोय।

ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।।"

प्रेम की गली इतनी संकरी है, उस में एक ही चल सकता है। जब व्यक्ति अंधकार पूर्ण हता है तब भगनान उस में आ नहीं पाता। अंहकार को त्याग ने पर भगवान उस गली में आ सकता है।

9. अनुभूति की तीव्रता

कबीर सरल हृदयी थे। जो भी विषय वे निष्कलंक तथा कपट रहित होकर पस्तुत करते थे। यह सारा संसार भ्रमात्मक है। नर को माया जनित संसार आकर्षित करता है और वह नर अंत में नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।

"माया दीपक नर पतंग भ्रमि भ्रमि इवै पडंत।

कहै कबीर गुरु म्यान ते एक आध उबरंत।।"

10. समाज सुधार : -

कबर की वाणी में समाज सुधार की चेतना दिखाई देती है। हमारी गलतियों को बताने वाला सब से हमारा हितैषी होता है। बिन साबुन और पानी के बिना वह हमें धोता चलता है।

"निंदक नियरे रखिए आँगन कुटी छवाय।

बिन साबुन पानी बिना निरमल करै सुभाइ।।"

11. दार्शनिक विचार धारा :

कबीर महान दार्शनिक हैं। वस्तुतः उनकी विचारधारा अद्‌वैतवाद से समन्वित है। उनकी विचारधारा रसात्मक अनुभूति से समन्वित है। अनुभूति की तीव्रता में वे भगवान के मिलन के लिए ललचाते हैं। जीवात्मा परमात्मा के मिलन के लिए तडपना कबीर के साहित्य में हृदयस्थित है। राम से मिलने के लिए वे पुकारते हैं.

"आँखडिया झाई पडी पंथ निहारि –निहारि।

जीभडिया छाला पडिया राम पुकारि –पुकारि।।"

कभी- कभी उस तीव्रानुभूति में परमात्मा की झलक-दीप्ति दर्शित होती है, तो वे आनन्द विभोर होकर कहते हैं

“लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल।

लाली देखन मैं गई मैं भी हो गयी लाल ॥”

रहस्यवाद के तीन स्तर होते हैं ।

1. भावत्मक

2. साधनात्मक और

3. अभिव्यंजनात्मक

कबीरदास का रहस्यवाद भावात्मक तथा साधनात्मक है।

12. भाषा - शैली :

कबीर के काव्य में गेय मुक्तक शैली का प्रयोग हुआ है। गीतिकाव्य के सारे तत्त्व - भावात्मकता, संगीतात्मकता, सूक्ष्मता, वैयक्तिकता और भाषा की कोमलता कबीर की वाणी में मिलते हैं। कबीर का साहित्य अवधी; व्रज, खडीबोली, अर्ध मागधी, फारसी, अरबी, राजस्थानी, पंजाबी आदि भाषाओं के शब्दों का सम्मिश्रण है।

सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक, राजनीतिक आदि विषयों पर चलने पर भी कबीर की वाणी आडंबरहीन होकर एक दम सरल होती है।

13. उपसंहार :

कबीर का साहित्य अपना अलग महत्त्व रखता है। सामाजिक पक्ष तथा दार्शनिक पक्ष दोनों पर कबीर का समान अधिकार दिखाई देता है। प्रतीकात्मक योजना में चलने पर भी उनकी वाणी समाज के हृदयों पर अपनी छाप डालती है। भाषा पर उनका जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। इसीलिए साहित्यिक क्षेत्र में कबीर का स्थान अमर बन गया है।

अंत में हम यही कहना चाहते हैं कि कबीर संत पहले हैं और कवि बाद में उनकी वाणी में धार्मिक दृष्टिकोण प्रधान है। और काव्यगत दृटिकोण गौण है।

प्र. 2. कबीर की दार्शनिक विचारधारा के बारे में एक लेख प्रस्तुत कीजिए।

(अथवा)

कबीर के दर्शन सम्बन्धी विचार क्या थे, विवेचन कीजिए।

रुपरेखा :

1. प्रस्तावना

2. ब्रह्म सम्बन्धी विचार

   योग मर्यादा

3. जीव सम्बन्धी विचारधारा

4. जगत सम्मबन्धी विचारधारा

5. रहस्यवाद

6. जीवन की अस्थिरता

7. सामाजिक दर्शन

8. उपसंहार

1. प्रस्तावना :

भारतीय साहित्य में दर्शन भी साथ-साथ चलता रहता है। किसी भी साहित्यिक विशेष को सावधानी के साथ अवलोकन (परखना, देखना) करना दर्शन कहलाता है। दर्शन और साहित्य परस्पर पूरक हैं। कबीरदास वस्तुतः भक्त थे। संतों के साथ

उनका सम्पर्क था। इसलिए उनकी विचारधारा में परमात्मा, प्रकृति, जीव, माया आदि पर चर्चा हुई हैं।

ब्रह्म, जीव, तथा दगत सम्बन्धी विषयों पर चर्चा करना ही 'दर्शन' कहलाता हैं।

तत् + त्वं - तत्त्वं

वह (परमात्मा) तुम - तुम परमात्मा

कबीर निर्गुण परमात्मा को मानते हैं। यह एक प्रकार से भारतीय 'ब्रह्मवाद' है। कबीर अनपढ़ होने के कारण उन्होंने ब्रह्मवाद का अध्ययन नहीं किया। लेकिन साधु-संतों के संपर्क से जो ब्रह्म सम्बन्धी विचार बने वे भारतीय ब्रह्मवाद के अन्तर्गत आते हैं। अपने परमात्मा को कबीर राम रहीम, अल्लाह, गोविन्द आदि नामों से पुकारते हैं। वे निर्गुणेपासक होने के कारण निर्गुण परमात्मा की उपासना करने की सलाह देते हैं।

2. ब्रह्म सम्बन्धी विचार :

निरगुण राम, निरगुण राम जपहुरे भाई।

हिन्दु तुरक न कोई।।

परमात्मा हर जीव के अन्दर ही रहता है

न मैं मंदिर न मैं मसजिद। न काबे न कैलास में।।

हर जीव की साँस में परमात्मा रहता है। जिसप्रकार कस्तूरी मृग की नाभि में कस्तूरी रहती हैं। उसी प्रकार परमात्मा हर जीव के अन्दर रहता है। भगवान को न पहचान होने के कारण मानव भौतिक संसार में कहीं-कहीं भटकता रहता है।

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूँढै बन माँहि।

ऐसे घटि-घटि रॉम है, दुनियाँ देखे नाहिं।।

कबीर ज्ञानाश्री शाखा के प्रवर्तक होने के कारण सारे विश्व में परमात्मा के दर्शन करते हैं। वे कहते हैं कि- 'घटि- घटि' राम है। कबीर को कुछ लोग 'साधक' कहते हैं। कुछ लोग 'ज्ञानी' कहते हैं। कुछ लोग 'भक्त' कहते हैं और कुछ लोग 'कवि' कहते हैं। लेकिन वस्तुतः कबीर इन सब का समन्वय रूप हैं। परमात्मा को वे हर जीव में अंतर्लीन मानते हैं।

योग मर्यादा :

कबीर हठयोगी हैं। वे मूलाधार से निकलनेवाली इडा, पिंगला और सुषुम्ना नाडियों की चर्चा करते हैं। मूलाधार से निकलनेवाली चेतना इन नाड़ियों द्वारा सहस्रार तक पहुँचना ही कबीर कैलास, सहस्रार या सहस्रदल कमल कहते हैं। सहस्रार में से निकलनेवाले नाद को. "अनहदनाद" कहा है। मूलाधार से प्राण सहस्रार तक पहुँचना ही अमृतत्त्व सिद्धि कहलाती हैं।

3. जीव सम्बन्धी विचार : -

आत्मा शरीर धारण करने पर 'जीव' कहलाती हैं। जीव अस्वतन्त्र है। सदा परमात्मा की आराधना से जीव मुक्ति प्राप्त-कर लेता है। मोक्ष प्राप्ति केलिए कबीर ज्ञान, भक्ति, योग, ध्यान आदि की आवश्यकता प्रकट करते हैं। परमात्मा को बतानेवाला गुरु है। इसलिए कबीर गुरु को परमात्मा से भी महान मानते है।

7

गुरू गोविन्द दोख उडे, काके लागू पाय।

बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय॥

जीव अस्वतन्त्र है। उसे ज्ञान - मार्ग पर ले आनेवाला गुरु होता है। इसलिए कबीर गुरु की महत्ता अनुपम मानते हैं। सारी धरती को 'कागज' बना कर, सारे वृक्षों को 'लेखिनियाँ' बना कर, और सात समुद्रों का पानी 'स्याही' बना कर लिखने से भी गुरु की महिमा लिखी न जाती। वे कहते है -

गुरु धोबी शिष्य कपडा साबुन सिरजनहार।

सुरति सिला पर धोयिएँ।

4. जगत सम्बन्धी विचार :

कबीर सारे जगत को भ्रमात्मक तथा माया जनित मानते हैं। माया मानव को भगवान से अलग कर या दूर करके विविध सांसारिक बंधनों में या मोहों में डाल देती है। गुरु के ज्ञान से जीव उस माया से बच सकता हैं।

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि-भ्रमि इवै पडंत।

कहे कबीर गुरु ग्यान ते एक आध उबरंत॥

माया को कबीर मोहिणी, पापिणी, डाकिनी आदि नामों से बुलाते हैं।

वे करते है कि -

राम सुमरि राम सुमरि भाई।

भगवान के प्रति आत्म समर्पण करना ही जीव का लक्षण हैं। माया के भ्रम में जीव न पड़ कर भगवान में लगन होना ही "भक्ति" हैं। इसीलिए कबीर अपने को राम के कुत्ते तक मानते हैं।

कबीर कूता राम का, मुतियाँ मेरा नाम।

गले राम की जेवडी, जित खींचे तित जाऊँ॥

5. रहस्यवाद :

प्रकृति में परमात्मा को देखना और परमात्मा की उपासना करना 'रहस्यवाद' है। कबीर बडे रहस्यवादी हैं। कभी साधनात्मक और कभी भावात्मक रहस्यवाद में वे अपने विचार प्रस्तुत करते हैं। जीव परमात्मा से आता है। शरीर के अन्त हो जाने पर जीव पुनः परमात्मा में जा कर लीन हो जाता है।

जल मैं कुम्भ, कुम्भ में जल हैं, बाहर भीतर पानी।

फूटा कुम्भ जल जलहि समानाँ इहि तथ कयौ ग्यानी॥

जीव परमात्मा के दर्शन केलिए तड़पता रहता हैं। कबीर परमात्मा के दर्शन के लिए व्यथित होनेवाली आत्मा को प्रस्तुत करते है।

आँखडियाँ झाई पडी पंथ निहारि निहारि।

जीभडियाँ छाला पडया राम पुकारि पुकारि॥

ज्ञानी कबीर को परमात्मा की झलक दर्शित होने पर वे भाव विभोर हो कर कहते हैं।

लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल।

लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।

यहाँ कबीर का रहस्यवाद अद्वैतवाद से परिपुष्ट हैं। अद्वैतवाद में वैष्णाव शब्दों को समन्वित करना कबीर की साहित्यिक सार्वभौमता है सदा वे परमात्मा को राम

शब्द से सम्बोधित करते हैं। इसीलिए हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर को "वाणी के डिक्टेटर" कहते हैं।

6. जीवन की अस्थिरता :

कबीर सदा परमात्मा, जीव और जगत के बारे में ही सोचते रहते हैं। समाज में लोग विध्या, धन, प्रभुता (power) कीर्ति आदि पर गर्व करते हैं। लेकिन वे नहीं सोचते कि जीवन क्षणिक हैं। इसलिए गर्व न करें।

कबीर की बाणी कहती हैं।

पानी केरा बुदबुदा अस मनुष की जाति।

देखत ही छिप जायेगा ज्यों तारा परभाति॥

मृत्यु सदा मानवों को चुन चुन कर ले जाती है। प्रतीक योजना के द्वारा कबीर मानव जीवन की क्षण भंगुरता व्यक्त करते है।

माली आवत देखि के कलियाँ करी पुकार।

फूली फूली चुन लिए काल्ह हमारी बार।।

7. सामाजिक दर्शन :

कबीर का समय साहित्यक, धार्मिक, सांस्कृतिक, नैतिक तथा राजनीतिक दशाओं में संक्रामक था। मिथ्याडम्बरों में पण्डित पल्लवित हो रहे थे। समाज में सच्चाई का नाम नहीं था। इसलिए मिध्याबादी पण्डितों की अवहेलना करते हुए।

पोथी पढ़ि-पढि जग मुआ पंडित भया न कोइ।

ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पंडित होइ।।

आदमी को सत्य निष्ठ बनने केलिए उस की गलितियों को पकड़ने वाला साथ रहना चाहिए।

निंदक नियरे राखिए आँगन कुटी छवाइ।

बिन साबुन पानी बिना निरमल करै सुभाइ।।

वे कहते हैं - हिन्दू, दया की चर्चा करते हैं और मुसलमान, मेहर की चर्चा करते हैं। लेकिन व्यवहार में आ कर हिन्दुओं में न दया हैं और मुसलमानों में न मेहर हैं। इसप्रकार समाज में होनेवाले अनेक तृटियों का वे डट कर खण्डन करते हैं।

8. उपसंहार :

कबीर भक्त हैं, ज्ञानी हैं, साधु हैं, पति, पिता, कर्मठ (काम करनेवाला) और सब से बढ़ कर बडे दार्शनिक हैं। हर विषय में उनकी दार्शनिक विचारधारा अन्तर्लीन रहती है। ये योगी होने के कारण योग साधना के साथ-साथ राम और जगत पर प्रेम भावना रखते हैं। सब से बढ़ कर दार्शनिक लालच नहीं होता। लालच माया जनित है। इसलिए वे भगवान से कहते हैं।

साई इतना दीजिए जा में कुटुंब समाय।

मैं भी भूखा न रहूँ साधु न भूखा जाय।।

प्र.3. कबीर की रहस्यवादी विचारधारा की समीक्षा कीजिए।

रूपरेखा -

1. प्रस्तावना

2. साधना तथा भावुकतापूर्ण रहस्यवाद

अ. साधना पूर्ण रहस्यवाद

आ. भावना पूर्ण रहस्यवाद

3. माधुर्य भावना

4. उलटबाँसियाँ

5. उपसंहार

प्रस्तावना :

आत्मा, परमात्मा सम्बन्धी विचार साहत्य में परम्परागत चर्चित हैं। यह रहस्य जितना भी सोचे और जितना भी खोजें आज तक कोई दार्शनिक, कोई कवि या कोई भक्त या ज्ञानी पूर्णतया बोल न पाये। वे अपने विचार परमात्मा के बारे में प्रस्तुत करते रहे जो रहस्यवाद के अन्तरगत आते हैं। इन सब को समन्वित कर के आचार्य रामचन्द्रशुक्ल जी ने रहस्यवाद की परिभाषा दी है "चिन्तन के क्षेत्र में जो ब्रह्मवाद हैं, वही साहित्यिक क्षेत्र में रहस्यवाद कहलाता है।"

2. साधना तथा भावुकतापूर्ण रहस्यवाद :

कबीर साधु और कवि हैं। इसलिए उन की कविता में साधना प्रधान रहस्यबाद और भावना प्रधान रहस्यवाद दोनों व्यक्त होते हैं।

अ. साधना प्रधान रहस्यवाद :

कबीर के साधनापरख रहस्यवाद पर सिद्ध तथा नाथ साहित्य का प्रभाव, अपभ्रंश साहित्य का प्रभाव, अदद्वैतवाद का प्रभाव, सूफी साहित्य का प्रभाव, हठयोग का प्रभाव आदि हैं। साधक आत्मबल प्रधान होता है। वह सदा भगवान में रत (लीन) रहता है। वह किसी से नहीं डरता, क्यों कि परमात्मा उस के साथ है। इसलिए कबीर कहते हैं -

जाके रक्खे साइया मारि न सक्कै कोइ।

बाल न बँका करि सकै, जो जग वैरी होय।।

कबीर अनन्त परमात्मा के प्रकाश को अनेक सूर्यों की कान्ति से भी महान मानते हैं। वह - अगम्य अगोचर और सदा जगमगानेवाली ज्योति है। •

'अगम अगोचर गमि नहीं, तहाँ जग मगे ज्योति।"

यह ज्योति हर जीव के हृदय में रहती है।

"प्यंजर प्रेम प्रकासिया, अन्तरि भया उजास।

मुखि कस्तूरी मह मही, बाँणी फूटी बास।।"

आत्मा और परमात्मा का मिलन लवण और पानी जैसा होना चाहिए। साधक बहिर्मुखी से अन्तर्मुखी हो कर साधना में मग्न होता हैं।

"सुरति समणी निरति में, अजपा माहै जाप"।

साधक भगवान के ध्यान में लीन हो, समाधिस्त हो जाता है। तब उसका जप अजप में परिवर्तित हो जाता है। नाडी व्यवस्था इडा, पिंगला और सुषुम्ना के द्वारा

सहस्रार पहुँच जाती हैं। तब साधक अमृतत्व सिद्धि प्राप्त करता है। इसी को कबीर उलटबॉसी के द्वारा प्रकट करते हैं।

आकासे मुखि औंधा कुआँ, पाताले पनिहारि।

ताका पाँणी को हंसा पीवै, बिरला आदि बिचारि॥

आ. भावना प्रधान रहस्यवाद :

इसके अन्तर्गत कबीर सूफी सिद्धान्त को कहीं-कहीं अपनाते हैं। साधक स्त्री के रूप में और परमात्मा पुरुष रूप में चित्रित होता हैं। आत्मा परमात्मा केलिए व्याकुल होना और व्यथित होना विरह कहलाता हैं। कबीर में विरह की तीव्रता बढ़ती हैं। वे क्षण-क्षण अपने प्रियतम राम की राह जोहते रहते हैं।

बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।

जिव तरसै तुझ मिलन कूँ, मति' नाहीं विश्राम।।

राम के वियोग में भक्त कबीर तडपते रहते हैं। उनकी भावना कहती हैं कि- "शरीर में भगवान की छाँह साँप की तरह सदा चलित या चरित होती रहती है। राम के वियोग में भक्त का जीना कठिन हैं। अगर जीयेगा भी तो वह पागल हो जाएँगा।

बिरह भुवंगम तन बसै, मंत्र में लागै कोइ।

सम बियोगी ना जिवै, जिवै तो बौरा होइ।।

कबीर के अनुसार जीवन पानी का बुदबुदा है -

पानी केरा बुदबुदा अस मानुष की जाति।

देखत ही छिप जायेगा, ज्यो तारा पर भाति॥

इस क्षणिक तथा लघु जीवन में मानव भगवान की कृपा प्राप्त करना चाहता है। वह भाव विभोर हो कर -

रोता है, पुकारता है और रस्ता देखता रहता है।

आँखडियाँ झाँई पडी, पंथ निहारि निहारि।

जीभडियाँ छाला पडया, राम पुकारि पुकारि॥

भगवान की झलक प्रप्त होने पर साधक अतुलित आनन्द की प्राप्ति करता है। वह उस आनन्द को भाव में व्यक्त न कर पाता। उसकी वाणी "गूँगे के मुह गुड" बन जाती हैं। कहे कबिर गुड खाया.

यह 'ब्रह्म सूत्रों' का सार हैं - 'अथा तो ब्रह्म-जिज्ञासा'।

कवि कबीर की यह भावना गीता का सार है -

"तेषां नित्य अभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम "

संत कबीर की भावना उस रहस्योल्लास में आनन्द की डुबकियाँ लेती रहती है। तब वाणी से कोई 'वैखरी' शब्द नहीं निकलता "यतोवाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह”

3. माधुर्य भावना :

आत्मा परमात्मा में लीन होने की भावना ही “माधुर्य" हैं। कबीर की आत्मा सतत परमात्मा में लीन होना चाहती है। परमात्मा कहीं बाह्य संसार में नहीं है। वह हर जीव में विद्‌यमान हैं। वह निर्गुण और भावना प्रधान है। कबीर की आत्मा मूलाधार से निकल कर सहस्रार में पहुँचना माधुर्य भावना की चरम सीमा है। वहाँ मधुर अमृतत्व बिन्दु के रूप में आ कर आत्मा का उज्जीवन होता है। तब सारी नाडियों में 'मधुरता' व्याप्त होती है। इसलिए कबीर कहते हैं –

मोको कहाँ ढूँढे बंदे, मैं तो तेरे पास में।

न मैं देवल न मैं मसजिद न काबे कैलास में।।

कबीर की माधुर्य भावना अन्तर जगत में लीन है। जिस प्रकार वैष्णवों की सारूप्य, सामीप्य, सालोक्य और सायुज्य दशाएँ होती हैं वही अनुभव कबीर का है। वे भगवान के ध्यान में और भगवान के भाव में लीन रहते हैं। जहाँ कबीर राम के दर्शन अन्तर जगत में करते है, वहाँ - सूरदास, तुलसीदास और मीराबाई परमात्मा का दर्शन (बाह्म) बाहय जगत में करते हैं। चाहे बाहय हो या आन्तरिक हो, भगवान के प्रति भावना रखना मधुर है। कबीर का रहस्य परमात्मा को अन्दर देखना है। मानव को नलिनी के रूप में और जल को परमात्मा के रूप में कबीर भावना करते हैं –

"जल में उतपति, जल में वास, जल में नलिनी, तोर निवास।"

बढही को काल के रूप में, वृक्ष को वृद्धावस्था के रूप में और पक्षी को आत्मा के रूप में कबीर भावना करते हैं।

बाढि आवत देखि करि, तरिवर डोलन लाग।

हम कटे की कचु नहीं पँखेरू घर भाग।।

4. उलटबाँसियाँ :

कबीर के काव्य में चमत्कारपूर्ण और रहस्यपूर्ण 'उलटबाँसियाँ' हैं। कठोपनिषद में अनेक रहस्यात्मक विषयों की चर्चा हुई हैं। कबीर पर वेद और उपनिषतों का प्रभाव है। भावजाल में पडे हुए मनुष्यों की उलटी हुई अवस्या को कबीर अपनी उलटबाँसियों द्वारा व्यंजित करते हैं। योग साधना का विवरण कबीर उलटबाँसि के द्वारा व्यक्त करते हैं।

आकासे मुखि औंधा कुवाँ, पाताले पनिहारि।

ताका पाँणी को हंसा पीवै, बिरला आदि बिचारि।।

इसका मूल भगवतगीता के विभूति योग में है - "ऊर्ध्वमूलं अधश्शाखा..............”

5. उपसंहार :

कबीर अनपढ़ हैं लेकिन वे बडे भावुक और ज्ञानी हैं। वे निर्गुणोपासक हैं और उनका दर्शन परवर्ती कवियों केलिए मार्गदर्शक बन गया। वे स्वयं कहते हैं - वेद न जानूँ, भेद न जानूँ, जानूँ एकहि रामा । वे शब्दों का आवरण पार कर भावना क्षेत्र में पहुँचते हैं। हर जीव में हर वस्तु में और सारे विश्व में वे परमात्मा का दर्शन करते हैं। ये दर्शन दो प्रकार के है -

1. बाह्य दर्शन

2. आन्तरिक दर्शन

कबीर स्वयं योगी हैं। रहस्यवाद योग प्रक्रिया का एक भाग है। कबीर हठयोग को रहस्यवाद से समन्वय करके प्रस्तुत करते हैं और कभी भावना के द्वारा वे रहस्यवाद को प्रस्तुत करते हैं। हिन्दी साहित्य में एक प्रकार से रहस्यवाद कबीर से ही प्रारम्भ हुआ है। कालगति में अनेक विद्वानों ने और कवियों ने रहस्यवाद के बारे में अपना अपना विश्लेषण किया था।

प्र.4. कबीर की सामाजिक विचारधारा का मूल्यांकन कीजिए

(अथवा)

कबीर की सामाजिक विचारधारा प्रस्तुत कीजिए।

रूपरेखा -

1. प्रस्तावना

2. सामाजिक विचारधारा

अ. जाति - पान्त सम्बन्धी विचार

आ. बाह्याडम्बरों का खण्डन

इ. धार्मिक विचार

ई. सात्त्विक विचार

उ. राजनीतिक विचार

ऊ. निन्दा से न डरें

3. उपसंहार

प्रस्तावना :

कवि वस्तुतः सामाजिक प्राणी है। कवि का उद्‌गम (पैदाइश) समाज से होता है। कवि सदा सामाजिक श्रेय चाहता हैं। उस श्रेय केलिए वह ललचाता रहता है। सामाजिक दोषों को बता कर उनका निर्मूलन करना चाहता है। सामाजिक हित केलिए वह नए मार्गों का भी अन्वेषण करता रहता है।

कबीर वस्तुतः भक्त हैं। भक्त के साथ - साथ वे विचारक भी हैं। विचारक दो प्रकार के होते हैं -

1. भावनापरक विचार और

2. सामाजिक विचार

सामाजिक विचार :

सभ्य मबुव्यों के समूह को समाज कहते हैं। कबीर ने समाज को परखा और समाज से सम्बन्धित अपने विचार के प्रस्तुत किए। कबीर सामाजिक विचारधारा के अन्तरगत निम्न बताये गये विषयों की चर्चा करते हैं।

अ. जाति पान्त सम्बन्धी विचार :

सारे मनुष्य भगवान की सृष्टि हैं। भगवान समदर्शी हैं, तब भगवान से बनाया गया मानव, जाति पान्त के नाम पर क्यों झगडा कर रहा है? मानव केलिए चाहिए- ज्ञान, न कि जाति- पाँत की चर्चा। इसलिए कबीर

का कथन है -

जाति न पूछो साधु कि, पूछ लीजिए ज्ञान।

मोल करो तलवार का, पडा रहने दो म्यान॥

आ. बाह्याडम्बरों का खण्डन :

कबीर काशी के निवासी थे। बडे बडे ग्रन्थों को पढनेवाले बहुत से पंडित होते हैं। लेकिन पुस्तकों का सार ग्रहण करनेवाले बहुत कम। इसलिए वे कहते हैं। -

पोथी पढ़ि- पढि जग मुआ, पण्डित भया न कोय।

एकै अखिर पीव का पदै सो पण्डित होय॥

कपटी भक्तों को कबीर पकड लेते हैं और कहते हैं -

माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुँह माहि।

मनुआ तो दस दिश फिरै, यह तो सुमरिन नाहि॥

ढोंगे गुरुओं की अवहेलना करते हुए वे कहते हैं. ---

ताका गुरु भी अंधला, चेला खरा निरंध।

अंधा अंधा ठेलिया, दून्यूँ कूप पडंत॥

इ. धार्मिक विचार : -

कबीर ने तत्कालीन धार्मिक प्रथाओं को परखा। हिन्दू और मुसलमानों में होनेवाले बहुत से रीतिरिवाजों का खण्डन किया। उन्होंने मुसलमानों के रोजा, नमाज, हज आदि और हिन्दुओं के श्राद्ध, एकादशी, तीर्थ, व्रत आदि का खणडन किया। फिर वे कहते हैं- न हिन्दुओं में दया हैं और न मुसलमानों में मेहर, तीर्थयात्राओं का खण्डन करते हुए वे कहते हैं –

मोको कहाँ ढूँढे बंदे, मैं तो तेरे पास में।

न मैं देवल, न मैं मस्जिद, न काबे कैलास में॥

कबीर धार्मिक प्रवृत्तियों का खण्डन करके, निवृत्ति मार्ग का बोध करते हैं। वे कर्म काण्डों का खण्डन करते हुए कहते हैं - पाहन पूजे हरि मिले मैं पूजूँ पहाड।

सात्विक विचार :

मानव को न्यायशील होना है। न्याय का अर्थ - क प्रकार से 'जीओ' और 'जीने दो' है । आर्थिक लालच में पड कर मानव बेकार धन का संचय करेगा तो आवश्यक लोगों को असुविधा होगी। इसलिए कबीर कहते हैं -

साई इतना दीजिए, जा मैं कुटुम्ब समाय।

मैं भी भूखा न रहूँ साधु न भूखा जाय॥

उ. राजनीतिक विचार : -

कबीर निडर थे। डट कर शासक की गलतियाँ भी बताते थे और हिन्दू और मुसलमानी धर्मो में मिलने और का समनवय करके बताते थे। कहा जाता है कि एक बार सिकंदर लोडी के दरबार में कबीर पर धार्मिक अभियोग लगाया गया था। उनको बेडियाँ लगा कर गंगा में फेंक दिया गया और अग्नि कुण्ड में फेंक दिया गया, लेकिन वे गंगा से बाहर आये और अग्नि कुणड उनको जला न सका। मस्ति का हाथी भी उनकों न कुचल कर नमस्कार करने लगा। यहाँ कबीर की सत्यवादिता प्रकट होती हैं।

ऊ.. निन्दा से न डरना :

कबीर निर्भीक व्यक्ति हैं। निर्भीक का अर्थ हैं- कोई गलती न करना। गलती न करने से व्यक्ति को जीवन किसी से डरने की आवश्यकता नहीं। इसे कहते - आत्मबल आत्मबल व्यक्ति को अपने पर विश्वास होता है और उसके साथ आत्म विश्वास के साथ वह जीवन बिताता है। कबीर और एक पग आगे बढते है और कहते है – हमारी निन्दा करनेवालों को अपने ही पास में रखना चाहिए ताकि उसके कारण हम सदा जागरूक रहेंगे।

निन्दक नियरे राखिए आंगन कुटी छवाय।

उपसंहार : -

कबीर भक्त और साधु का समन्वित रूप हैं 'भक्त' भगवान को आत्म समर्पण करता हैं। 'साधु' आत्म ज्ञान के साथ - साथ उपदेशक भी होता हैं। एक प्रकार से भक्त अन्तर्मुखीं हैं और साधु बहिर्मुखी हैं। कबीर भक्त और साधु भी होने के कारण वे उपदेशक भी हैं। इसलिए उनके उपदेशों में अनेक सामाजिक विषय भी आते हैं। कबीर इस प्रकार समाज सुधारक हैं।

ऐसे कवि, सुधारक तथा साधु अजर तथा अमर बन जाते हैं।

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।

नास्ति एषां यशःकाये जरामरणजं भयम्:।।

5. ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रवर्तक कबीरदास की भक्ति का विवेचन कीजिए।

रूपरेखा: :

1. प्रस्तावना

2. आत्म निवेदन

3. जीव की लघुता और परमात्मा की महानता

4. शरणागति

5. विरह विग्धता

6. निर्गुण वैष्णव भक्ति

7. उपसंहार

1. प्रस्तावना :

कबीर और ज्ञानी बताया जाता है। परखने पर ज्ञानी और संत दोनों भक्त के अंतरगत ही आते र मनिार्म की रसात्मक अनुभूति है।" यहाँ रस का अर्थ है परमात्मा में लीन होना। श्रद्धा और क्ति हैं। कबीर वस्तुतः भक्त हैं। ज्ञान, योग, रहस्यवाद आदि भक्ति के समर्थन में आते हैं।

नारद भगवत् में नवधा भक्ति की भविक विश्लेषण हुआ है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चनं वन्दनं दस्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

2. आत्म निवेदन :

भक्ति का प्रधान तत्व आत्म निवेदन है। कबीर परमात्मा से आत्म निवेदन करते हुए कहते हैं –

हे भगवान - साई इतना दीजिए जा में कुटुम्ब समाय......। यह सत्वगुण का लक्षण हैं। इस केलिए आत्म समर्पण की।

3. जीव की लघुता और परमात्मा की महानता :

भक्ति में जीव अपनी लघुता प्रकट करता है और साथ ही परमात्मा की महानता स्वीकार करता है। वह अपने को परमात्मा के अनुयायी और कुत्ते तक बताता है।

कबीर कूता राम का मुतिया मेरा नाम।

गले राम की जेवडी, जित खींचे तित जाऊ॥

4. शरणागत

भक्ति की चरम सीमा शरणागति है। भगवान के नाम पर पूरे रूप से अपना आत्म समर्पण करना शरणागति है। गीताकार के अनुसार - सारे धर्मों कोत्याग कर परमात्मा की शरण में जाना सब से महान धर्म है। तटस्थ जीवन बिताते हुए परमात्मा - का ध्यान करना शरणागति हैं। शरणागति में आत्मोज्जीवन होता हैं। इसीलिए कबीर कहते हैं "मैं किसी अन्य को जानता नहीं केवल राम को जानता हूँ।"

वेद न जानूँ, भेद न जानू जानूँ एकहि रामा॥

5. विरह विदग्धता

भक्ति में तल्लीन होने पर जीव को भगवान के दर्शन का आभास होता है। उस आभास में जीव या भक्त विरह की व्यथा भोगता हैं। कबीर की वाणी में.......

आँखडियाँ झायी पडी, पंथ निहारि निहारि।

जीभडियां छाला पडया., राम पुकारि पुकारि ॥

परमात्मा के दर्शन होने पर भक्त आनन्द विभोर हो कर सर्व जगत में परमात्मा के दर्शन करता है.

लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल ।

लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल ॥

6. निर्गुण वैष्णव भक्ति :

कबीर निर्गुण भक्तिधारा के प्रमुख कवि हैं। लेकिन वे राम का जप करते रहते हैं, और कहते है

निरगुण राम निरगुण राम जपहुरे भाई।

रामानन्द के शिष्य होने के कारण कबीर पर वैष्णव भक्ति का प्रभाव अधिक है। उनकी प्रतीक योजना और उलटबाँसियों में वैष्णव संप्रदाय के ही अनेक उदाहरण देखे जाते हैं। वे सारे संसार को भूल सकते हैं, लेकिन राम नाम नहीं भूल सकते। दिन और रात राम के जागरण में वे रहते हैं। कभी-कभी वे रोने भी लगते हैं।

एक न भूला दोइ न भूला, भूला सब संसारा।

सुखिया सब संसार है, खाए और सोये।।

दुखिया दास कबीर है जागे और शेये।।

उपसंहार : -

भक्ति अनुभूति प्रधान है। अनुभूति भावना से समन्वित होने पर भक्ति पल्लवित होती है। जाति-पाँति और ऊँच नीच की भावना रहित निर्गुण भक्ति की रसधारा में निमग्न होनेवाले सर्वप्रथम साधक हैं कबीर। कबीर अलौकिक भावधारा से भक्ति को लौकिक जगत में ले आये। भक्ति में विषय वासनाओं का परित्याग, भजन, कीर्तन, गुरुकृपा, सादाचार, आडम्बर राहित्य, समदृष्टि आदि लक्षण होते हैं। सब से बढ़ कर भगवान के प्रति आत्मसमर्पण होता है। सच्चा भक्त निडर रहता है, क्यों कि परमात्मा सदा उस के साथ रहता है। अतः कबीर का कथन है. -

जाकै रक्खै साइया, मारि न सक्कै कोइ।

बाल न बंका करि सकै, जो जग बैरी होइ।।

*****

कबीरदास :

जीवनवृत नीरू और नीमा द्वारा जुलाहा परिवार में पालित, शास्त्रज्ञान से वंचित पर काशी में आचार्य रामानंद का शिष्यत्व ग्रहण, जीवन का बहुत बड़ा भाग काशी में व्यतीत, अनेक संत-महात्माओं का सत्संग, १२९२ ई में सिकंदर लोदी द्वारा दंडित करने की चेष्टा, जीवन के अंतिम भाग में मगहर में निवास।

निरक्षर होने पर भी परम ब्रह्मज्ञानी, धार्मिक एकत्व और सामाजिक समता के बेजोड़ प्रबक्ता, निर्गुण, मतबाद के पुरस्कर्त्ता, मध्ययुग के सबसे सशक व्यंग्यकार रचनाएँ बीजक (साखी, सबद और रमैनी)।

साखी

गुरु गोबिंद तो एक है दूजा यहु आकार।
आप मेटि जीवत मरै तो पावै करतार।।

कबीर सतगुरु ना मिल्या रही अधूरी सीख।
स्वांग जती का परि घरि घरि भौगो भीख।।

सतगुरु ऐसा चाहिए जैसा सिकलीगर होइ।
सबद मसकला फेरि करि देह द्रपन करे कोइ।।

कबीर सुमिरण सार है सकल जंजाल।
आदि अंत सब सोधिया दूजा देखौ काल।।

कबीर निरभै राम जपि जब लग दीवै बाति।
तेल घट्या बाती बुझी तब सोबैगा दिन राति।।

लावा मारग दूरि घर बिकट पंथ यहु मार।
कहौ संतौ क्यूँ पाइये दुरतभ हरि दीदार।।

चकवी बिछुरे रैणि की आइ मिली परभाति।
जे जन बिछुरे राम सूं ते दिन मिले न राति।।

यह तन जारौं मसि करौं धुवां जाइ सरग्गि।
मति वे राम दया करै बरसि बुझावे अग्गि।।

बिरह भुवंगम तनि बसै मंत्र न लागौ कोइ।
राम वियोगी ना जिवै जिबै तो वोरा होइ।।

सब रंग ताँत रबाब तन पिरहु बजावै नित्त।
और न कोई सुणि सकै कै सांई के चित्त।।

विपबा बुरहा जिनि कहै बिरहा है सुलितान।
जिस घटि विरह न संचरै सो घट सदा मसांण।।

आँखड़ियाँ झंई पड़ी पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पडया नाम पुकारि पुकारि।।

इस तन का दीवा करों बनी मेलहुँ जीव।

लोही सीचें तेल त्यूँफकब मुख देखौं पवि।।

जे रोऊं तौ बल घंटै हसौं तो राम रिसाइ।

मन ही मांहि बिसूरणां ज्यूं घुंण काठहिं खाइ।।

कै विरहिनि कूं मींच दै कै आपा दिखलाई।

आठ पहर का दाझणां मोपै सह्या न जाइ।।

हिरदा भीतर दौ बलौ धूंवा न प्रगट होइ।

जाकै लागी सो लखै कै जिनि लाई सोइ।।

अंतरि कवल प्रकासिया ब्रह्म- वास तहां होई।

मन भँवरा तहाँ लुबधिया जाणैगा जन कोई।।

हद्द छाड़ि बेहद गया कीया सुन्नि स्नान।

सुनि जन महल न पार्व तहाँ किया बिश्राम।।

पंजरि प्रेम प्रकासिया जाग्या जोग अनत।

संसा खूटा सुख भया मिल्या पियारा कंत।।

पाणी ही ते हिम भया हिम है गया बिलाइ।

जो कुछ था सोई भया अब कछु कह्या न जाइ।।

जब मैं था तब हरि नहीं अब हरि हैं मैं नाहि।

सब अंधियारा मिटि गया जब दीपक देख्या मांहि॥

हेरत हेरत हे सखी रह्या कबीर हिराइ।

बूँद समाणी समंद में सो कत हेरी जाइ।।

हेरत हेरत हे सखी रह्या कबीर हिराइ।

समंद समांणां बूँद में सो कत हेरया जाइ।।

कबीर एक न जाणियां तौ बहु जाण्या क्या होइ।

एक तै सब होत हैं सब तैं एक न होइ।।

कबीर कहा गरबियौ इस जोबन की आस।

कसू फूले दिवस चारि खंखड़ भवा पलास।।

कबीर कहा गरबियौ काल गहे कर केस।

ना जाणौं कहां - मारिसी कै धरि कै परदेस।।

यह तन काचा कुंभ है लीयां फिरै या साथि।

ठबका लागा फूटिया कछू न आया हाथि।।

हिरदो भीतरि आरसी मुख देखणां न जाइ।

मुख तौ तौ परि घूंदेखिए जे मन की दुबिधा जाइ।।

काया देवल मन धजा विषै लहरि फहराइ।

मन चालयाँ देवल चलै ताका सरबस।।

कबीर मारग कठिन है कोई न सक।

गए से बहुड़े नहीं कुसल कहै को आई।।

माया मुई नमन वा मरि मरि गया सरीर।

आता त्रिस्नांना भुई यूँ कह गया कबीर।।

सहज सहज सब कोई कसै सहज ने चीन्हे कोई।
जिन्ह सहजै विषया तजी सहज कहोजे सोइ।।

मन मथुरा दिल द्वारिका काया कासो जांगि।
दसवां द्वारा देहुरे तामै जोति पिछांणि।।

पावक रूपी राम है घटि घटिरह्या समा।
चित चकमक लागी नहीं ताते ही धुंधुँआइ।।

गावण ही में रोज है रोवण ही में राग।
इक बैरागी गृह में इक गिरही बेराग।।

हम घर जाल्या आपणां लीया मुराढ़ा हाथि।
अब घर जालों तासका जे तलें हमारे साथि।।

सबद

(1)

संतो धोखा कासूं कहिए।

गुण मैं निर्गुण निर्गुण मैं गुण है बाट छाड़ि क्यूँ बहिर।

अजरा अमर कथै सब कोई अलख न कथणां जाई।

नां तिस रूप बरन नंही जाकै घटि-घटि रह्य समाई।

व्यंड ब्रह्माणअड की सब कोई बाकै आदि अरु अंति न होई।

प्यंड ब्रह्मण्ड छाड़ि जे कधिए कहै कबीर हरि सोई।।

(2)

लोका मति के भोरा रे।

जौ कासी तन तज़े कबीरा तो रामहि कहा निहोरा रे।

तब हम वैसे अब हम ऐसे इहै जनम का लाहा।

ज्यूं जल में जल पैसि न निकसै यूं दुरि मिल्या जुलाहा।

राम भगति परि जाको हित चित ताकी अचिरज काहा।

गुरु प्रसाद साध की संगति जग जीतें जाइ जुलाहा।

कहत कबीरः सुनहु रे संतौ श्रमि पैर जिनि कोई।

जस कासी तस मगहर ऊसर हिरदै राम सति होई।

(3)

पानी विच मीन पियासी।

मोहि सुनि - सुनि आवत हाँसी।

आतम ज्ञान विना सब सूना क्या मथुरा क्या कासी।

घर में वस्तु घरी नहिं सूझै बाहर खोजत जासी।

मृग की नाभि माँहि क्सतूरी वन वन फिरत उदासी।

कहत कबीर सुनो भाई साधो सहज मिले अविनासी।

(4)

बाल्हा आव हमारे गेह रे।

तुम्ह बिन दुखिया देह रे।

सबको कहै तुम्हारी नारी मोकौ इहै अंदेह रे।

एकमेक है सेज न सोवै तब लग कौसा नेह रे।

आन न भावै नींद न आवै ग्रिह बन धेरै न धीर रे।

ज्यूं कामी कौं काम पियारा ज्यूं प्यासे कूं नीर रे।

है कोई ऐसा पर उपगारी हरि सूं कहै सुनाई रे।

ऐसे हाल कबीर भए हैं बिन देखे जीव जाइ रे।

(5)

तो को पीव पिलेंगे घूँघट का पट खेल रे।

घट - घट मे वह साई रहता कटुक वचन मत बोल रे।

धन जौबन को गरव न कीजे झूठा पँच रंग चोल रे।

सून्न महल में दियना बारि ले आसा सों तम डोल रे।

जोग जुगुत सो रँगमहल में पिय पायो अनमोल रे।

कहैं कवीर आनंद भयो है बाजत अनहद ढोल रे।

(6)

झीनी झीनी बीनी चदरिया।

काहे कै ताना काहे कै भरनी कौन तार से बीनी चदरिया।

इंगला पिगला ताना भरती सुखमन तार से बीनी चदरिया।

आठ कँवल दल चरखा डोले पाँच तत्त गुन तीनी चदरिया।

साई को सियत मास दस लागौ ठोक कै वीनी चदरिया।

सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े ओढ़ि कै मैली कीनी चदरिया।

दास कबीर जतन से ओढ़ी त्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।

****

प्र.1. मानसरोदक खण्ड का सारांश लिखिए।

रूपरेखा :

1. प्रस्तावना

2. अनुपम रूप लावण्य

3. तत्कालीन समाज की बधुओं की परतंत्र स्थिति

4. पद्मावती का पारमात्मिक रूप

5. उपसंहार

1. प्रस्तावना:

मानसरोदक खण्ड की रचना सूफी महान कबि मलिक महम्मद जायसी ने की थी। प्रेम पीर के सच्चे साधक जायसी ने पदमावत काव्य में लौकिक प्रेम के द्वारा अलैकिक प्रेम का निरूपण किया है। इस काव्य में नायिका पदमावती परमात्मा की प्रतीक है। उसके व्यक्तितत्व एवं सौंदर्यसत्ता एवं सौंदर्य का इतने व्यापक रूप में चित्रण किया गया है कि जिससे किसी अनंत सौंदर्य- सत्ता के रूप में आभास होने लगता हैं। जायसी का रहस्यवाद मूलतः भारतीय अद्वैत भावना पर अश्रित है।

गंधर्वसेन राजा की रानी चम्पावती के गर्भ से पद्मावती का जन्म होता है। कन्या राशि में उत्पन्न होने से उनका नाम पद्मावती रखा गया। इस काव्य में पद्मावती रूप वर्णन के साथ साथ में पारमात्मिक तत्त्व भी बताया गया है। 'पद्मावत' प्रेममार्गी विचारधारा का काव्य है।

2. अनुपम रूप लावण्यः

किसी पूनम के दिन पदमावती मानसरोवर में स्नान करने के लिए अपनी सब सखियों के साथ निकलती है, मानो समस्त फुलवारी ही निकलती है। वे सब मालती रूप पद्मावती के साथ ऐसे चलीं मानो कमल के साथ कुमुदिनी हो। उनकी सुगन्धि की व्यापकता के कारण गंधर्व के समूह भी प्रभावित हो रहे थे।

“भेली सबै मालनि संग फूले केवल कमोद।

. बेधि रहे गन गंध्रप बास परिमलामोद।"

पद्मिनी की सखियों ने सरोवर के किनारे अपने जूड़े खोलकर बालों को फैला दिया। पद्मावती का मुख चन्द्रमा के समान है और शरीर मलयाचल की भाँति है। उस पर बिखरे हुए बाल ऐसे हैं जैसे सर्पों ने सुगन्धि के लिए इसे ढक लिया हो या फिर ये बाल मानो मेध ही उमड़ आये हैं जिससे सारे संसार में छाया हो गई। लहराते बाल ऐसे लगते हैं कि चन्द्रमा को ढक लिया है। केश इतने घने और काले हैं कि दिन होते हुए भी सूर्य का प्रकाश छिप गया, और चंद्रमा रात में नक्षत्रों को लेकर प्रकट हो गया। चकोर आकाश में चंद्रमा और धरती पर विराजमान चद्रमों को देखकर घबरा गयी। पद्मावती के दाँत बिजली जैसे चमकीले थे और वह कोयल की तरह मधुर भाषिणी थी। भौंहें ऐसी थीं जैसे आकाश में इंद्रधनुष हो। नेत्र क्या थे मानो दो खंजन के पक्षी क्रीड़ा कर रहे हों।

मानसरोवर उसके रूप को देखकर मोहित हो गया और इस बहाने से लहरें ले रहा कि किसी तरह पदंमावती के पैर छू सके।

3. तत्कालीन समाज की बधुओं की परतंत्र स्थितिः

सरोवर में स्नान करते समय या सब खेलती हुई सब सहेलियाँ पद्मावती से कहती हैं- हे रानी! मन में विचार करके देख लो। इस पीहर में चार दिन ही रहना है। जब

तक पिता का राज्य है तभी तक खेल लो जैसा कि आज फिर हमारा ससुराल जाने का समय आ जाएगा, तो फिर न जाने हम कहाँ होंगे और कहाँ यह तालाब और इसका किनारा होगा? और मिलकरके साथ खेल न पायेंगे। सास और ननद बोलते ही प्राण ले लेंगी। ससुर बडा कठोर होगा। वह आने भी नहीं देगा। न जाने प्रियतम कैसा व्यवहार करेगा।

"पिउ पिआर सब ऊपर सो पुनि करै देह काह।

कहुँ सुख राखै की दुख दहुँ कस जरम नि बाहु॥"

सखियाँ खेलती- खेलती रही, एक सखी का हार पानी में खो गया और वह चित्त से बैसुध हो जाती है। वह अपने आप कहने लगती है - मैं इनके साथ खेलने ही क्यों आई थी। स्वयं अपने हाथों से अपना हार खो चली। घर में घुसते ही इस हार के विषय में पूछे गये तो फिर क्या उत्तर देकर प्रवेश पा सकूँगी ? उसके नेत्र रूपी सीपी में आँसू भर आते हैं। एक सखी कहती है हमारे साथ खेलने की अच्छाई है और हार खोने की बुराई भी। जीवन में अच्छाई और बुराई दोनों होते हैं।

4. पद्मावती का पारमात्मिक रूपः

जब पद्मावती मानसरोवर में स्नान करने के लिए निकलती है तो पानी उसके पाँव छूने के लिए उछलने लगता है, जिस तरह परमात्मा का चरण छूने के लिए भक्त उभरते - ललचाते हैं। मानसरोवर ने कहा कि पारस के स्पर्श से लोहा, कंचन हो जाता है। वैसे ही उसके पैरों के स्पर्श से मैं निर्मल हो गया। उसके शरीर से मलयाचल की सुगंधि से मेरी तपन बुझ गई। मेरी दशा पुण्य की हो गई और पाप नष्ट हो गये।

चंद्रमा रूप पद्मावती की मुस्कान को देखकर कुमुदिनी रूप सखियाँ भी मुस्कराने लगी। जिस तरह भी देखो पद्मावती का रूप ही दर्शाने लगा है। जायसी कहते हैं सरोवर में कमल तो पद्मावती के नेत्र ही मानो प्रतिबिंबित कमल थे। उसका निर्मल शरीर ही मानो सरोवर में प्रतिबिंबित निर्मल जल था। उसका हास ही प्रतिबिंबित हंस थे। उसके दाँत ही मानो सरोवर में प्रतिबिंबित नग और हीरे थे।

इसमें जायसी ने परमेश्वर के बिम्ब - प्रतिबिम्ब भाव को इस प्रसंग के माध्यम से प्रकट करने का प्रयत्न किया है। पद्मावती बिम्ब है और यह सम्पूर्ण जगत उसीका प्रतिबिम्ब है।

5. उपसंहार -

जायसी के काल में यह पता चलता है कि नारी के (सौन्दर्य) नखशिख सौन्दर्य का वर्णन होता था। उन दिनों में प्रचलिय सामाजिक परिस्थितियों में नारी के पति के घर में जीवन का स्वरूप और नारी की मनोचिंतन का विश्लेषण हुआ है। पद्मावती को इस काव्य में परमात्मा के रूप में दर्शाया गया है। स्त्री की पूजा करदे नारी समाज की उन्नति करने का प्रयास किया गया है । पदमावती रूपी पात्र से सौंदर्य की लहर के साथ-साथ परब्रह्म का भी विश्लेषण हुआ है। पारमात्मिक सत्ता पर बल दिया गया है। जायसी के विलक्षण शैली से यह काव्य हिन्दी साहित्य में विशिष्ट बना।

इस प्रकार "पदमावत" काव्य में मानसरोदक खण्ड के द्वारा जायसी रहस्यवाद का प्रतिपादन करते हैं।

प्र. 2. जायसी की प्रेम-व्यंजना प्रस्तुत कीजिए।

रूपरेखा : -

1. प्रस्तावना

2. जायसी का 'पद्मावत'

(क) कथावस्तु

(ख) नारी (आलंबन) सौंदर्य का वर्णन

(ग) उद्दीपन (प्रकृति) का वर्णन

(घ) प्रेमाश्रय का चित्रण

(ङ) संचारीभाव

(घ) अनुभूतियाँ

(छ) स्थाई भाव का उत्कर्ष

3. उपसंहार

1. प्रस्तावना - भारतीय साहित्य में प्रेमाख्यानों की परम्परा :

भारतीय साहित्य में लगभग पाँचवीं शताब्दी से एक ऐसी काव्य-परम्परा का प्रवर्तन हुआ, जिसमें साहस और प्रेम का चित्रण अद्भुत रूप में मिलता है। इस काव्य परम्परा की आरम्भिक कृतियाँ - वासवदत्ता (सुबन्ध), कादम्बरी (बाण) और दशकुमार चरित (दंडी) हैं। प्राकृत - अपभ्रंश की तरंगवती, समरादित्य - कथा, भुवन - सुन्दरी, मलय - सुन्दरी, सुर - सुन्दरी, नागकुमार चरित, यशोधर चरित, करकंड चरित, पद्म चरित आदि में प्रेम का वही रुप उपलब्ध होता है, जो कि संस्कृत के

वासवदत्ता, कादम्बरी एवं दशकुमार- चरितादि में मिलता है। आगे चलकर यही काव्य - परम्परा हिन्दी में विकसित हुई जिसे सूफी प्रेमाख्यान- परम्परा या 'निर्गुण प्रेमाश्रयी शाखा' कहा जाता है। महाकवि जायसी भी इसी काव्य- परम्परा के अन्तर्गत आते हैं।

हमारे विद्वानों का विश्वास है कि जायसी तथा अन्य प्रेमाख्यान रचयिता कवियों ने अपने काव्य में अलौकिक - प्रेम या रहस्यवाद की व्यंजना की हैं। इस मत के समर्थन में ये युक्तियाँ दी गई है -

(१) इन कवियों ने सूफी मत के प्रचार के लिए अपने काव्यों की रचना की।

(२) इन काव्यों में आत्मा और परमात्मा के प्रेम का रूपक बाँधा गया है।

(३) इनमें स्थान - स्थान पर आध्यात्मिक सिद्धान्तों एवं साधना पद्धतियों का निरूपण किया गया है।

(४) इन काव्यों में नायिका (जो कि परमात्मा की प्रतीक है) के व्यक्तित्व एवं सौन्दर्य का इतने व्यापक रूप में चित्रण किया गया है कि जिससे किसी 'अनन्त सौंदर्य - सत्ता' के स्वरूप का आभास होने लगता है।

(५) इनमें प्रेम और विरह का ऐसा वर्णन किया गया है कि जिसमें आध्यात्मिकता का दर्शन होने लगता है।

जायसी ने लिखा है- मैंने यह सोचकर काव्य लिखा है कि संसार में मेरा कोई स्मारक चिन्ह रह जाय। जो लोग इस कहानी को पढ़ेंगे, वे मुझे भी याद करेंगे -

औ मैं जानि कवित अस कीन्हा।

मकु यह रहै जगत महँ चीन्हा॥

जो यह पढ़े कहानी, हम्ह सैवरै दुई बोल

पद्मावत के अन्त में कवि जायसी ने घोषित किया है -

प्रेम कथा एहि भांति विचारहु, बूझि लेई जौ बुझे पारहु । इस रूपक में रत्नसेन को मन का तथा पद्मावती को बुद्धि का प्रतीक माना गया है। रत्नसेन के सिंहलगढ़ में पहुँचने के अनन्तर भी पद्मावती को एक कामवासना एवं भोग लिप्सा से विह्वल युवती के रूप में देखते हैं -

जोबन भर भादौं जस गंगा, लहरें देई, समाइ न अंगा।

'यौवन भार' एवं कानोन्माद का जैसा वर्णन किया गया है, उससे स्पष्ट है कि
पद्मिनी का प्रेम सर्वथा लौकिक स्तर का

2. 'जायसी का 'पद्मावत' -

(क) कथावस्तु -

हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य परम्परा की सर्वश्रेष्ठ रचना जायसी कृत 'पद्मावत' मानी जाती है। इसका नायक रत्नसेन है, जो कि हीरामन तोते के मुँह से पद्मिनी के रूप सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर उसके प्रेम में बिह्वल हो जाता है। वह अपने घर, परिवार और देश को छोड़कर उसकी प्राप्ति के लिए निकल जाता है तथा अनेक कठिनाइयों के पश्चात् उसकी प्राप्ति में सफल हो पाता है। विवाह के अनन्तर भी पद्मिनी और रत्नसेन को कई कष्टों का सामना करना पड़ता है । अन्त में दिल्ली सुलतान अलाउद्दीन से युद्ध करता हुआ रत्नसेन वीरगति को प्राप्त हो जाता है और पद्मिनी सती हो जाती है। इस काव्य में श्रृंगार रस के सभी अवयवों एवं अनेक दशाओं का मार्मिक वर्णन उपलब्ध होता है।

(ख) नारी (आलम्बन) सौन्दर्य का वर्णन :

नारी- सौन्दर्य के चित्रण में जायसी ने परम्परागत नख - शिख वर्णन की शैली का प्रयोग किया है। उन्होंने नारी रूप के सामूहिक प्रभाव की व्यंजना की अपेक्षा उसके अंग प्रत्यंग का अलग-अलग वर्णन किया है। वे अपनी सूक्ष्म - पर्यवेक्षण - शक्ति के बल पर प्रत्येक अवयव की बाह्य एवं आन्तरिक विशेषताओं का उद्घाटन कुशलतापूर्वक कर देते हैं; यथा केशों का एक वर्णन देखिए –

भँवर केस, वह मालति रानी। विसहर लुरहि लेहि अरघानी।

बैनो छोरि झारु जौं बार। सरग पतार होइ अंधियारा॥

यहाँ केशों की श्याम - वर्णता, वक्रता, सुगन्धि एवं मनमोहकता आदि सभी गुणों की व्यंजना भ्रमर, विषधर, अन्धकार, मलयगिरि और श्रृंखला आदि उपमानों की सहायता से कर दी गई है।

वस्तु के सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण के जायसी के सौन्दर्य - वर्णन में कुछ प्रवृत्तियाँ और मिलती हैं। एक तो उन्हें वर्णन -विस्तार से इतना अधिक प्रेम है कि उनका नख - शिख - वर्णन एक पूरे सर्ग का रूप ले लेता है। दूसरे, वे अत्युक्तियों एवं अतिशयोक्तियों का अधिक प्रयोग करते हैं।

सुन्दरियों के रूप के प्रभाव सिद्ध करने के लिए भी वे द्रष्टा के आहत हो जाने मूच्छित हो जाने, या प्राण त्याग देने की कल्पना बारम्बार करते हैं। फिर भी सौन्दर्य की व्यंजना उनके काव्य में वर्णन के रूप में ही अधिक होती है। एक एक अंग का अलग अलग विखरा हुआ सौन्दर्य किसी समन्वित प्रभाव की पुष्टि नहीं करता, उनकी अत्युक्तियाँ -

आश्चर्यजनक होते हुए भी पाठकों के हृदय को तरंगित करने में असमर्थ हैं और उनका विस्तृत वर्णन उभार देनेवाला सिद्ध होता है। नारी की सूक्ष्म चेष्टाओं एवं मधुर भाव - भंगिमाओं का चित्रण भी उनके काव्य में बहुत कम हुआ है।

(ग) उद्दीपन (प्रकृति) का वर्णन :

श्रृंगारोद्दीपन के लिए भी जायसी ने ऋतु - वर्णन एवं बारहमासा-कथन की परम्परागत शैलीयों का व्यवहार किया है, फिर भी उनकी कुछ निजी विशिष्टताएँ हैं। संयोग में समय शीघ्र बीत जाता है, किन्तु विरह के क्षण लम्बे होते हैं, अतः जायसी ने दोनों के लिए क्रमशः ऋतु - वर्णन और बारहमासा - वर्णन का आयोजन करके सूक्ष्म बुद्धि का परिचय दिया है।

उदाहरणस्वरूप कुछ पंक्तियाँ देखिए -

रितु पावस बरसौ, पिउ पावा। सावन भादों अधिक सुहावा॥

कोकिल बैन, पाँत बग छूटी। गनि निसरि जेउँ बीरबहूटी॥

संयोगकालीन दृश्यों के चित्रण में कवि के प्रत्येक शब्द से उल्लास की अभिव्यक्ति होती थी, वहाँ उपर्युक्त वर्णन में वातावरण की कठोरता को ऐसे शब्दों में उपस्थित किया गया है कि पाठक का हृदय अनुभूति से ओत-प्रोत हो जाता है। वस्तुतः जायसी का प्रकृति - वर्णन कल्पना और अनुभूति के सुन्दर सामंजस्य से पूर्ण है और वह स्थायीभाव की व्यंजना के अनुरुप पृष्ठभूमि तैयार करने में पूर्णतः समर्थ है।

(घ) प्रेमाश्रय का चित्रण : -

पद्मावत में प्रणय - भावना का आश्रय प्रारम्भ में केवल नायक ही रहता है, जो अपने प्रयत्नों से नायिका के हृदय को भी जीत लेने में सफलता प्राप्त कर लेता है।

यद्यपि तोते के मुख से नख - शिख - वर्णन सुनकर रत्नसेन की सौन्दर्यानुभूतियों की व्यंजना अत्यन्त मार्मिक रूप में हुई है।

फूल फूल फिरि पूँछों, जो पहुँचों आहिं केत।

तन निछावर के मिलों, ज्यों मधुकर जिउ देत॥

(ङ) संचारी भाव :

श्रृंगारस के क्षेत्र में रति और निर्वेद जैसे दो विरोधी संचारी भावों की स्थिति एक साथ संभव होती है। रत्नसेन के हृदय में भी प्रणय की गम्भीरता के साथ ही वैराग्य की सृष्टि हो जाती है और वह अपना सब कुछ त्यागकर घर से निकल जाता है।

तजा राज राडा भा जोगी। ओ किंगरो कर गहेउ वियोगी।

तन विसंभर मन बाउर रटा। अरुझा प्रेम परी सिर जटा॥

रत्नसेन का यह निर्वेद संयोग होने तक बराबर प्रणय भावना के साथ चलता रहता है। इसके अतिरिक्त संचारी भावों की भी योजना कवि ने अवसरानुभूति सफलता पूर्वक की है।

(च) अनुभूतियाँ :

पद्मनी की प्रेमानुभूतियाँ - पद्मनी में हम प्रेमानुभूतियों का विकास ऋमिक रूप में पाते हैं। प्रारम्भ में वह काम-वेदना से पीड़ित है -

सुनु हीरामन कहों बुझई, दिन-दिन मदन आई सतावै।

जोवन मोर भयउ जस गंगा, देह-देह हम्ह लाग अनंगा॥

आगे चलकर रत्नसेन के दर्शन के अनन्तर उसकी यह कामवासना प्रेम में परिणत हो जाती है और जब वह सुनती है कि उसका प्रियतम उसी के लिए शूली पर चढ़ रहा है तो उसके हृदय का अणु- अणु पिघलकर मानवता के रूप में बहने लगता है।

संयोगानुभूतियाँ - जायसी ने नायक - नायिका की संयोगानुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए प्रथम समागम, हास - परिहास, शतरंज- चौपट के मनोरंजन, सुरत एवं सुरतान्त आदि का विस्तृत वर्णन किया है। विवाह के अनन्तर प्रथम रात्रि में प्रियतम के पास जाती हुई पद्मावती की हृदय- दशा का परिचय उसके इन शब्दों में मिलता है -

अनचिन्ह पिउ काँपे न माहाँ, का मैं कहब गहब जब बाँहाँ।

जब रत्नसेन अपने प्रेमपूर्ण शब्दों से उसका भय और संकोच दूर कर देता है तो वह भी अपना कृत्रिम भोलापन प्रदर्शित करती हुई अपनी हास- परिहासमयी उक्तियों से छेड़- छाड़ करने लगती है।

अपने मुँह न बढ़ाई छाजा, जोगो कतहुँ न होहि नाहि राजा ।

(छ) स्थायीभाव का उत्कर्ष

पद्मावत में प्रेम भावना के प्रादुर्भाव के सम्बन्ध में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उसमें नायक और नायिका में प्रेम का विकास एक साथ नहीं होता। दोनों के प्रेम प्रवृत्ति एवं गति में भी पर्याप्त भेद है। रत्नसेन प्रेम के आदर्श स्वरूप को उपस्थित करता है, जबकि पद्मावती ने यथार्थ एवं व्यावहारिक रूप का लोभ - मात्र सिद्ध किया है।

पद्मावती की प्रणय - भावना में हम क्रमिक विकास पाते हैं। पिरस्थि तियों के अनुसार उसमें प्रेम, कामुकता और रसिकता की सीमा को पार करके अपने विशुद्ध

एवं गम्भीर स्वरूप को प्राप्त कर लेता है, जो मनोवैज्ञानिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से बहुत संगत है। अपने विकास की चरमावस्था में आदर्श प्रेम और यथार्य प्रेम दोनों एक स्तर पर पहुँच जाते हैं। पद्मावती की प्रणय - भावना अन्त में साहस, त्यागादि के सभी गुण से समन्वित हो जाती है, जो रत्नसेन में हम प्रारम्भ से ही पाते है।

रत्नसेन और पद्मावती के प्रणय सम्बन्ध के कारण नागमती का कष्ट - भोग और विवाह के अनन्तर दोनों - सपत्नियों की ईर्ष्या, कलह आदि देखकर कदाचित् कुछ लोग उनके प्रेम को अश्रद्धा की दृष्टि से देखें, अतः इस दुष्टि से विचार करना आवश्यक है। कवि ने आरम्भ में नागमती को रूप - गर्विता एवं तोते की हत्या में प्रयत्नशील दिखाकर पाठक की सहानुभीति के मार्ग में अवरोधक लगा दिया है। अतः उसके प्रति राजा का निष्ठुर व्यवहार उचित प्रतीत होता है। नागमती का दारुण विरह अवश्य हृदयद्रावक है, किन्तु रत्नसेन उसका संदेश प्राप्त होते ही लौट जाता है। सपत्नियों की प्रारम्भिक गुह-कलह भी स्वाभाविक है, जो आगे परिस्थितियों की कठिनता से शान्त हो जाती है।

3. उपसंहार :-

वस्तुतः इस काव्य में प्रेम को आदर्श और यथार्थ - दोनों गुणों से समन्वित करते हुए उसे पूर्ण उत्कर्ष तक पहुँचा दिया गया है। बिना साहस और त्याग के प्रेम पूर्ण गंम्भीरता को प्राप्त करने में असमर्थ रहता है। प्रेम का यह आदर्श भारतीय साहित्य में मुख्यतः प्रेमाख्यानों में पूर्ण शब्दों में व्यंजना करने की दृष्टि से जायसी हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट कवि सिद्ध होते हैं ।

प्र.3. पद्मावत में व्यक्त रहस्यवाद पर प्रकाश डालिए।

अथवा

पद्मावत के आधार पर जायसी कृत रहस्यवाद की चर्चा कीजिए।

रूपरेखा

1. प्रस्तावना

2. अद्वैतवाद की परिणति: रहस्यवाद

3. सूफी संप्रदाय तथा रहस्यवाद

4. जायसी और रहस्यवाद

5. पद्मावत में व्यक्त रहस्यवाद

6. अन्तर्जगत तथा बाह्य जगत: बिंब - प्रतिबिंब भावना

7. अमरधाम

8. उपसंहार

1. प्रस्तावना :

भारतीय अद्वैतवाद तथा ब्रह्मवाद को सभी पैगम्बरी मतों ने स्वीकार किया। वही दार्शनिक अद्वैतवाद साहित्य के क्षेत्र में रहस्यवाद के रूप में विलसित हुआ। योरोप में भी अद्वैतवाद ईसाई धर्म के भीतर रहस्य - भावना के रूप में लिया गया था। जिस प्रकार सूफी ईश्वर की भावना प्रियतम के रूप में करते थे उसी प्रकार स्पेन, इटली आदि यूरोपीय देशों के भक्त भी ईश्वर को भावना करते थे।

अद्वैतवाद के दो पक्ष हैं।

1. आत्मा और परमात्मा की एकता तथा

2. ब्रह्म और जगत की एकता

दोनों मिलकर सर्ववाद की प्रतिष्ठा करते हैं - 'सर्वं खलिवदं ब्रह्म'; 'सर्व ब्रह्ममयं जगत्' । ईसा की 19 वीं शताब्दी में यूरप में रहस्यात्मक कविता सर्ववाद के रूप में जागृत हुई। अंगरेज कवि शेली में सर्ववाद की झलक दिखाई देती है। आयलैंड में कीट्स की रहस्यमयी कविवाणी सुनाई देती है। उसी समय भारत में कबीर, खीन्द्र की कलम से रहस्यवादी कविता उतरने लगी।

2. अद्वैतवाद की परिणति :

रहस्यवाद अद्वैतवाद का प्रतिपादन पहले उपनिषदों में मिलता है। उपनिषद भारतीय ज्ञान - कांड के मूल हैं। प्राचीन कवि अद्वैतवाद का तत्व चिन्तन करते थे। अद्वैतवाद मूलतः एक दार्शनिक सिद्धान्त है, कवि कल्पना या भावना नहीं। वह ज्ञान क्षेत्र की वस्तु है। दर्शन का संचार भावक्षेत्र में होने पर उच्च कोटि के भावात्मक रहस्यवाद की प्रतिष्ठा होती है। रहस्यवाद दो प्रकार का होता है -

1. भावात्मक

2. साधनात्मक

हमारे यहाँ का योगमार्ग साधनात्मक रहस्यवाद है। अद्वैतवाद या ब्रह्मवाद को लेकर चलनेवाली भावना से सूक्ष्म तथा उच्च कोटि के रहस्यवाद की प्रतिष्ठा होती है। गीता के दशम अध्याय में सर्ववाद का भावात्मक प्रणाली पर निरूपण हुआ है।

3. सूफी संप्रदाय तथा रहस्यवाद :

निर्गुण भक्ति शाखा के कबीर, दादू आदि सैतों की कविता में व्यक्त ज्ञान मार्ग भारतीय वेदान्त का भारतवर्ष में साधनात्मक रहस्यवाद ही हठयोग तंत्र और रसायन के रूप में प्रचलित था। सूफी मत में भी इसके प्रभाव से 'इला, पिंगला, सुषुम्ना' नाडियों का संचार तथा षट्चक्रों की चर्चा हुई। फलतः (1) रहस्य की प्रवृत्ति और (2) ईश्वर को केवल मन के भीतर देखना सूफी संतों ने अपना लिया। रहस्यवाद का स्फुरण सूफियों में पूरा-पूरा व्याप्त हुआ। कबीर के रहस्यवाद पर भी सूफी प्रभाव है। लेकिन कबीर के रहस्यवाद में साधनात्मक अधिक और भावात्मक कम।

4. जायसी और रहस्यवाद :

जायसी की कविता में रमणीय और सुन्दर अद्वैती रहस्यवाद है। उनकी भावुकता बहुत ही उच्च कोटि की है। सूफियों की भक्तिभावना के अनुसार जगत के नाना रूपों में प्रियतम परमात्मा के रूपमाधुर्य की छाया देखते हैं। सारे प्राकृतिक रूपों और व्यापारों को 'पुरुष' के समागम के हेतु प्रकृति के श्रृंगार उत्कण्ठा या विरह - विकलता का रूप वे अनुभव करते हैं।

5. पद्मावत में व्यक्त रहस्यवाद :

'पद्मावत' के ढंग के रहस्यवाद पूर्ण प्रबन्धों की परंपरा जायसी से पहले की है। मृगावती, मधुमालती आदि रहस्यवादी रचनाएँ जायसी के पहले ही हो चुकी हैं। उस रहस्यमयी अनन्त सत्ता का आभास देने के लिए जायसी पद्मावत में बहुत ही रमणीय और मर्मस्पर्शी दृश्य संकेत उपस्थित करते हैं। उस परोक्ष ज्योति और सौन्दर्यसत्ता की और लौकिक दीप्ति और सौंदर्य के द्वारा जायसी संकेत करते हैं -

जहँ जहँ बिहँसि सुभावहिं हँसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी॥

नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर।

हँसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर॥

प्रकृति के बीच दिखाई देनेवाली सारी दीप्ति परमात्मा की ही है।

चाँदहि कहाँ जोति औ करा।

सुरुज के जोति चाँद निरमरा॥

मानस के भीतर प्रियतम के सामीप्य से उत्पन्न अपरिमित आनन्द की और विश्वव्यापी आनन्द की यंजना जायसी के काव्य में व्यक्त होती है।

देखि मानसर रूप सोहावा।

हिय हुलास पुरइनि होइ छावा॥

गा अँधियार रैन मसिछूटी। भा भिनसार किरिन रवि फूटी॥

कँवल विगस तस विहँसी देही। भँबर दसन होइ कै रसलेही॥

6. अन्तर्जगत तथा बाह्य जगत: बिंब-प्रतिबिंब भावना

जायसी रहस्यवाद के अन्तर्गत अन्तर्जगत तथा बाह्य जगत और बिंब प्रतिबिंब भावना व्यक्त करते हैं।

बरुनि -चाप अस ओपहँ बेधे रन बन ढाँख।

सौजहि तन सब रोबाँ, पंखिहि तन सब पाँख॥

पृथ्वी और स्वर्ग, जीव और ईश्वर दोनों एक थे; न जाने किस ने बीच में इतना भेद डाल दिया है।

धरती सरग मिले हुतदोऊ। केइ निनार के दीन्ह बिछाऊ॥

जो इस पृथ्वी और स्वर्ग के वियोग तत्त्व को समझेगा और उस वियोग में पूर्णतया सम्मिलित होगा, उसी का बियोग सारी सृष्टि में व्याप्त होगा -

राती सती, अगिनि सब काया, गगन मेघ राते तेहि छाया।

सायं - प्रभात न जाने कितने लोग मेघखंडों को रक्तवर्ण होते देखते हैं। पर किस अनुराग से ये लाल हैं, इसे जायसी जैसे रहस्यदर्शी भावुक ही समझते हैं।

7. अमरधाम :

प्रकृति के महाभूत सारे उस 'अमरधाम' तक पहुँचने का, बराबर पहुँचने का, बराबर प्रयत्न करते रहते हैं। पर, साधना पूरी हुए बिना पहुँचना असंभव है।

चाँद सुरज और नखत तराई। तेहि डर अंतरिख फिरहि सबाई॥

पवन जाइ तहँ पहुँचे चहा। मारा तैस लोटि भुइँ रहा॥

अगिनि उठी, जरि बुझी निआना। धुँआ उठा, उठि बीच बिलाना॥

पानि उठा, उठि जाइ न छूआ बहुरा रोइ, आइ भुइँ चूआ।

8. उपसंहार :

इस अद्वैतवादी रहस्यवाद के अतिरिक्त जायसी कहीं-कहीं उस रहस्यवाद में आ फँसे हैं जो पाश्चात्यों की दृष्टि में झूठा रहस्यवाद है। उन्होंने स्थान स्थान पर हठयोग, रसायन आदि का भी आश्रय लिया है।

****

जायसी - मानसरोदक खण्ड

(1)

एक दिवस पून्यौ तिथि आई, मानसरोदक चली अन्हाई।

पदमावति सब सखी बुलाई, जनु फुलवारि सबै चलिआई।

कोई चम्पा कोइ कुंद सहेली, कोइ सुकेत करना रसबेली।

कोई सु गुलाल सुदरसन राती कोइ सोबकावरिबकचुन भाती।

कोइ सु मौलसरि पुहुपावती, कोइ जाही जूही सेवती।

कोइ सोनजरद कोइ केसर कोई सिंगारहार नागेसर।

कोइ कूजा सदबरग चॅबेली, कोई कदम सुरस रसबेली।

चलीं सबै मालति सँग, फूले कर्बल कुमोद।

बेधि रहे गन गंधरव, बास परीमल मोद।

शब्दार्थ:

पूनिउँ = पूनोंकी, उन्हाई = स्नान करने, नकौरि = गुलबकावली, बकचुन = गुच्छा, जाही = एक प्रकार फूल, जूही = यूथिका, सेवती = सफेद गुलाब, जेउँ = जसी, गंध्रप = गंधर्व

भावार्थः

एक दिन पूनम की तिथि आयी । पद्मावती मानसरोवर नहाने के लिए चली। उसने अपनी सब सखियों को बुलाया। वे इस प्रकार चलने लगी मानों समस्त फुलवारी ही चली आयी हो। उन सखियों में कोई चम्पा, कोई कुन्द, कोई केतनी, करना, रसबेली, गुलाल, सुदर्शन, गुलबकावली का गुच्छा आदि लग रही थीं, कोई सोनजरद जैसी थी और कोई केसर जैसी थी, कोई हरसंगार तो कोई नागकेसर की तरह थी। कोई कूजा जैसी और कोई सदबरंग और चमेली की तरह भी, कोई कदम्ब की तरह हो तो और कोई सुन्दर रसबेली जैसी थी।

वे सब पद्मावती के साथ ऐसे चली मानो कमल के साथ कुमदिनी हों। उनकी सुगन्धि की व्यापकता के कारण गन्धर्व के समूह भी प्रभावित हो रहे थे।

अलंकारः

उत्प्रेक्षा तथा उपमा अलंकार यहाँ प्रयुक्त हुए हैं।

(2)

सोलन मानससरोवर गई, जापान पर ठाडी भई।

देखि सरोवर रहसई केली पद्मावत सौ कह सहेली।

ये रानी मन देखु विचारी, एहि नैहर रहना दिन चारी।

जो लागे अहै पिता कर राजू, खेलि तेहु जो खेलहु आजू।

पुनि सासुर हम गयनम काली, कित हम कित यह सरवर पाली।

कित आवन पुनि अपने हाथी, कित मिति कै खेलव एक साथी।

सासुननद बोलिन्ह जिउनेही दारून ससुर न निसरै देहि।

पिउ पिआर सिर ऊपर, सो पुनि करै दहुँ काह।

दहुँ सुख राखै की दुख, दई कस जनम निबाहू।

भावार्थः

सारी सखियाँ खेलती हुई मानसरोवर पर आई और किनारे खडी हुई। मानसरोवर को देख कर वे सब आती क्रीडा करती हैं। सच सहेली पदमावती से कहती है, "हे रानी! मन में विचारकर देखलो। इस नैहर में चार दिन ही रहना है। जब तक पिता का राज्य है, तब तक खेल लो जैसा आज खेल रही हो। फिर हमारा ससुराल चले जाने का समय आयेगा। तब हम न जाने कहाँ होंगे और कहाँ यह सरोवर और कहाँ यह किनारा होगा। फिर आना अपने हाथ कहाँ होगा ? फिर हम सबका कहाँ मिलकर खेलना होगा ? सास और ननद बोलते ही प्राण ले लेंगी। ससुर तो बडा ही कठोर होगा। वह हमें यहाँ आने भी नहीं देगा।"

इन सब के ऊपर प्यारा प्रियतम होगा। न जाने वह भी फिर कैसा व्यवहार करेगा। न जाने वह सुखी रखेगा या दुखी। न जाने जीवन का निर्वाह कैसे होगा।

विशेषताएँ : यहाँ तत्कालीन वधुओं की परतन्त्राता पर चर्चा हुई है। ससुराल में वधुओं की दीन दशा का विवरण हुआ है।

(3)

मिलहिं रहसि सब चढ़हि हिडोरी झूलि लेहि सुख बारी भोरी।

झूलि लेहु नैहर जब ताई, फिरि नहिं झूलन देशह साई।

पुनि सासुर लेइ राखिहि तहाँ, नैहर चाह न पाउब जहाँ।

कित यह धूप कहाँ यह छाहाँ, रहब सखी बिनु मंदिर माहाँ।

गुन पूछिहि और लाइहि दोखू, कौन उत्तर पाउब तहँ मोखू।

सासु ननद के भौह सिकोरे, रहब सँकोचि दुवौ कर जोरे।

किन रहसि जो आउब करना ससुरेइ अंत जनम दुख भरना।

कित तैहर पुनि आउब, कित ससुरे यह खेल।

आपु आपु कहँ होइहि, परब पंखि जस डेल।

शब्दार्थः

रहसि = रहेंगी। हिंडोरी = झूला। पाउब = पायेंगी । छाहाँ = छाँव, छाया। मोखू = मोक्ष । सिकोरे = सिकोडेगी। साईं = परमात्मा । परब = भावार्थ: झूठा । परिव = पक्षी । डेल = पिंजहा।

भावार्थ:

सखियाँ आपस में कहती हैं, "अभी हम मिलजुल कर झूला झूलेंगी। कारी बारी से हम झूला झूल कर हम भोली कन्याएँ सुख प्राप्त करेंगी। नैहर में रहने पर ही यह झूला झूलेंगी। फिर भगवान हमें झूलने नीं देगा। फिल हमें ससुराल जाकर रहना पडेगा। तब हम कहाँ नैहर पायेंगी। यह धूप, यह छाँव, यह वातावरण, ग्रह मंदिर, ये सखियाँ आदि फिर हमें कहाँ प्राप्त होंगे। गुणों के बारे में पूछताछ कर के दोष बताये जायेंगे और किस प्रकार का उत्तर देकर वहाँ मोक्ष प्राप्त करेंगी। सास और ननद भौंहे सिकुडेंगी और हमें दोनों हाथ जोड़ कर संकोच में रहना पडेगा। फिर कब यहाँ आना होगा और ससुराल में ही जन्म का दुख भोगते हुए पडा रहना होगा।

कहाँ फिर नैहर में आयेंगी और कहाँ ससुराल पर यह खेल होगा? हम सब अपने-अपने ससुराल पर ही पिंजडे में पक्षी की तरह रहेंगी।

विशेषताएँ:

जायसी ससुराल में बधुओं की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हैं।

(4)

सरवर तीर पदुमिनी आई, खोंपा छोरि केस मुकलाई

ससि-मुख अंग मलयगिरि बासा, नागिन झाँपि वीन्ह चहुँ पासा

ओनये मेघ परी जग छाहाँ, ससि कै सरन लीन्ह जनु राहाँ

छपि गौ दिनहि भानु कै दसा, लेइ निसि नखंत चाँद परगसा

भलि चकोर दीठि मुख लावा, मेघ घटा महँ चन्द देखावा

दसन दामिनी कोकिल भाखी, भौंहें धनुखं गगन लेइ राखी

सरवर रूप बिमोहा, हियें हिलोरहि लेइ

पावँ छुवै मकु पावौं, येहि मिस लहरैं देइ

शब्दार्तः

खोंपा = जूड़ा। छोरि = खोलकर । मोकराई = फैलाया। अरधानी = सुगन्धि के लिए। ओनए = छाजाने से। राहाँ = रहुने | दिस्टि = दृष्टिं | विमोहा = मोहित हो गया । मकु = स्यात | मिसु = बहाने से।

भावार्थ:

पदिमनी जाति की वे स्त्रियाँ सरोवर के किनारे आयी और अपने जूडे खोलकर बालों को फैला दिया। पद्मावती रानी का मुख चन्द्रमा के समान और शरीर मलयाचल की भाँति है। उस पर बिखरे हुए बाल ऐसे लगते हैं जैसे सर्पों ने सुगंध के लिए उसे ढ़क लिया हो। फिर ऐसा लगता है कि वे बाल मानो मेघ ही उमड आये हों जिससे सारे जगत में छाया फैल गयी। मुख के समीप बाल ऐसे लगते हैं मानो राहुने चन्द्रमा की शरण लेली हो। केश इतने घने और काले हैं कि दिन होते हुए भी सूर्यका प्रकाश छिंप गया है। और चन्द्रमा रात में नक्षत्रों को लेकर प्रकट हो गया। चकोर भूल कर उस ओर लगा रहा क्यों कि उसे मेघों की घटा के बीच पद्मावती का मुख रूपी चन्द्रमा दिखाई दे रहा पद्मावती के दाँत बिजलीके समान चमकीले थे और वह कोयल के समान मधुर भाषिणी थी। भौंहें ओकाश में इन्प्रधनुषलग रही थीं . नेत्र क्रीडाकरनेवाले खंजन पक्षी लग रही थीं।

मानसरोवर पद्मावती के रूप को देख कर मोहित हो गया। हृदय में वह कामना रूपी लहरें भरने लगा। लहरें पद्माती के चरणों को स्पर्श करने के बहाने उभर रही थी।

विशेषताएँ:

यहाँ उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और भ्रान्तिमान अलंकार प्रयुक्त हुए है।

(5)

घरीं तीर सब कंचुकि सारी, सरवर महँ पैठी सब बारी

पाइ नार जानौं सब बेली, हुलसहिं करहि काम कै केली

करिल केस बिसहर बिस - भरे लहरै लेहि कवैल मुख धरे

नवल बसन्त सँवारी करीं, होई परगट चाहहि रसभरीं

उठीं कोंप जस दायिँ दाखा, भइ ओनंत प्रेम कै साखा

सरिवर नहिं समाइ संसारा, चाँद नहाइ पैठ लेइ तारा

धनि सो नीर ससि तरई ऊई, अब कित दीठ कवँल और कूई

चकई बिछुरि पुकारै, किहाँ मिलौ हो नाहँ।

एक चाँद निसि सरग महँ, दिन दूसर जल माहँ।

शब्दार्थ:

कंचुकि = चोली | बारी = बालाएँ। बेलीं = बेलें, लताएँ। हुलसी = प्रसन्न हुई। नवल = नया । करिल = काले। बिसहर = सर्प । कोंप = कोंपल । ओनंत = झुकना । उईं = उदित हुई। कुई कुमुदिनी। सरग = आकाश।

भावार्थ:

पद्मावती और सखियों ने छिपी हुई अपनी चोलियाँ किनारे पर रख दीं और सब बालाएँ तालाब में घुस गईं। वे सच ऐसे प्रसन्न हुई जैसे लताओं ने जल पा लिया हो। वे सब आनन्दित हुई और काम की क्रीहाएँ करने लगीं। उनके काले काले बाल ऐसे प्रतीत होते थे मानो बिषैले सर्प हों और केश के पास सुन्दर मुख ऐसा लगता ता कि सर्पोड ने अपने मुख में कमल को पकड रखा हो और सब लहराते फिर रहे हो। उनके आधर ऐसे लगते थे मानो आनार और दाख की कोमल कोंपल निकल रही हों। उनके वक्ष स्थल पर थोडे उभरे हुए उरोज प्रकट करते थे मानो उनकी आयु के नये वसन्त ने कलियों को पैदा करदिया हो और थे कलियाँ रसपूर्ण होकर पूर्ण यौवन के रूप में प्रकट होना चाहती हों। किंचित झुकी हुई बालाएँ ऐसी लगती तीं प्रेम की शाखा ही झुक गई। प्रसन्नता के मारे सरोवर फूला हुआ था। अब वह संसार में नहीं समाता क्यों कि पद्मावती रूपी चन्द्रमा अपनी सखियों साथ उसमें

नहा रहा है। वह जल धन्य है जहाँ चन्द्रमा और नक्षत्र उदित हो गये। अब वहाँ कमल और कुमुदिनी कहाँ दिखाई पडते हैं ?

चकवी चकवे से बिछुड कर पुकारती है, "हे नाथ! तुम कहाँ मिलोगे ! एक चन्दुमा तो रात्रि को स्वर्ग में रहता है और दूसरा दिन में जल में रहता है।

(6)

लागी केलि करै मॅझ नीरा, हंस लजाइ बैठ ओहि तीरा

पदमावति कौतुक कहँ राखी, तुम ससि होहु तराइन साखी

बाद मेलि के खेल पसारा, हारु देइ जौ खेलत हारा

सॅबरिहि साँबरि गोरिहि गोरी आपनि आपनि लीन्हि सो जोरी

बूझि खेल खेलहु एक साथा, हारु न हइ पराये हाथा

आजुहि खेल बहुरि कित हुई, खेल गये कित खेलै कोई

धनि सो खेल सो पैमा, उइताई और कूसल खेमा?

मुहमद बाजी प्रेम कै, ज्यों भावै त्यों खेल

तिल फूलहि के ज्यों, होइ फुलायल देल

शब्दार्थ:

मँझ = मध्य । बादि = बाजी, मेलिलगाकर । हारु = हार । हारा = हार जाय। रैताई = प्रभुताई । कुसल = कुशल | रवेमा = क्षेम | बारि = जल | परेम = प्रेम । तील = तिल । फुलाएल = फुलेल (सुगन्धि)।

भावार्थः

पद्मावती एवं सखियाँ जल के बीच क्रीडा करने लगीं। उनकी मनोहर क्रीडा देख कर हंस लज्जित होकर किनारे पर बैठ गया। सखियों ने पदमावती को कौतुक देखनेवाली के रूप में बिठाकर कहा, “तुम शशि के रूप में हम तारागण की साक्षी हो कर रहो। फिर उन्होंने बाजी लगाकर खेलना शुरू किया- खेलने में जो हार जाय, वह अपना हार देदे। साँवली ने साँवली के साथ और गोरी ने गोरी के साथ अपनी-अपनी जोडी बनाली थी। समझ बूझ कर एक साथ खेल खेल खेलें, जिस से अपना हार दूसरे के हाथ न जाये। आज ही तो खेल है। फिर यह खेल कहाँ होगा ? खेल के समाप्त हो जाने पर, फिर कोई कहाँ खेलता है ? वह खेल धन्य है जो प्रेम के आनन्ध से युक्त हो। (ससुराल में) प्रभुताई और कुशल क्षेम एक साथ नहीं रह सकते।

मलिक मुहम्मद जायसी कहते हैं, "प्रेम के जल में जैसा भावे, वैसा ही खेलो। जिस प्रकार तिल फूलों के साथ मिलकर सुगन्लित तेल बन ही जाते हैं उसी तरह बाजी खेलनी हैं। जैसे भाव वैसे ही प्रेम की बाजी खेलो।"

विशेषताएँ :

यहाँ समासोक्ति अलंकार प्रयुक्त हुआ है।

(7).

सखी एक तेइँ खेल न जाना, चेत मनिहार गँवाना

कवँल डार गहि भै बेकरारा, कासौं पुकारौं आपन हारा

कित खेलै आइउँ एहि साथा, हार गँवाइ चलिउँ लेइ हाथा

घर पैठत पूछब यहि हारू, कौनु उत्तर पाउब पैसारू

नेन सीप आँसुन्ह तस भरे, जानौ मोति गिरहि सब ढरे

सखिन कहा वौरी कोकिला, कौन पानि जोहि पौन न मिला?

हारु गँबाइ सो ऐसे रोबा, हेरि हेराइ लेहु जौं खोवा

लागीं सब मिलि हेरे, बूड़ि बूड़ि एक साथ

कोइ उठी मोती लेइ, घोंघा काहू हाथ

शब्दार्थ:

तेइ = वह । बेकरारा = व्याकुल। पैसारू = प्रवेश । पैठत = घुसते ही । औसेहि = ऐसेही । हेरि = ढूँढना । हेराई = ढूँढवाना।

भावार्थ

एक सखी उस खेल को नहीं जानती थी। उसका हार खो गया तो वह बेसुध हो गई। कमल की नाल पकड कर वह व्याकुल हो गई और कहने लगी, "मैं अपने हार का विषय किस से पुकारूँ? मैं इनके साथ खेलने ही क्यों आयी थीं जो कि स्वयं अपने हाथों से अपना हार खो बैठी। घर में घुसते ही इस हार के विषय में पूछा जायेगा तो फिर क्या उत्तर देकर प्रवेश कर पाऊँगी ?" उसके नेत्र रूपी सीपी में आँसू भरे हुए थे। वे सीपी से मोती गिरते जैसे लगते थे। सखियों ने कहा र "हे भोली कोयल। ऐसा कौन - सा पानी है जिसमें पवन न मिली हो । सुख-दुख अथवा अच्छाई - बुराई सर्वत्र व्याप्त हैं। खेल की अच्छाई के साथ हार खोने की बुराई भी वैसे ही मिली हुई है। हार खोनेवाला ऐसा ही रोता है। खोये हुए हार को ढूँढ लो अथवा हम से ढूँढ़वा लो।

वे सब मिल करके ढूँढ़ने लगीं और एक साथ ही सब डुबकी लगाने लगी। किसी के हाथ में मोती आया और उसे लेकर ही ऊपर उठी और किसी के हाथ में घोंघा ही लगा।

विशेषताः

1. जायसी यहाँ साधना में होने विघ्नों की और संकेत करते हैं।

2. उपमा तथा छेकानुप्रास अलंकार प्रयुक्त हुए हैं।

(8)

कहा मानसर चाह सो पाई, पारस - रूप इहाँ लगि आई।

भा निरमल तिन्ह पायन्ह परसें, पावा रूप रूप के दरसें।

मलय - समीर बास तृन आई, भा सीतल, गौ तपपिन बुझाई।

न जनौं कौनु पौन लेइ आवा, पुन्य दसा भै पाप गँवावा।

तनखन हार बेगि उतिराना, पावा सखिन्ह चन्द बिहँसाना।

बिगसे कुमुद दखि ससिरेखा, भै तहँ ओप जहाँ जोइ देखा।

पावा रूप रूप जस चहा, ससि-मुख जनु दरपन होई रहा।

नयन जो देखा कवँल भा, निरमल नीर सरीर।

हँसत जो देखा हंस भा, दसन-जोति नग हीर।

शब्दार्थ:

भा = हुआ । पुन्नि = पुप्य की । ततरवन = तत क्षण । उतिराना भावार्यः = तैर आया। निरमर = निर्मल ।

भावार्यः

मानसरोवर ने कहा मैं जिसे चाहता था, वह मुझे पा गई। पारस रूपी पद्मावती मेरे यहाँ आ पाई। उसके चरण स्पर्श से मैं निर्मल हो गया। उसके रूप दर्शन से मेरा भी स्वच्छ रूप हुआ। उसके शरीर से मलयानिल की सुगन्धि आयी, उसके स्पर्श से मैं भी शीतल हो गया और मेरा ताप बुझ गया। न जाने कौन सी वायु चली जो इसे यहाँ ले आयी, मेरी पुण्य की दशा हुई और पाप नष्ट हो गये। उसी क्षण शीघ्रता से हार उत्पर तैर आया और सखियों को मिल गया। उसे देख कर चन्द्रमा रूपी पद्मावती हँस पडी।

चन्द्रमारूप पद्मावती की मुस्कान देखकर कुमुदिनी रूप सखियाँ भी मुस्कराने लगीं। पद्मावती ने जहाँ - जहाँ जो - जो देखां वह सब उसके रूप के समान ही बना। अन्य वस्तुओं के रूप भी पद्मावती के मुख के समान हुए। इस तरह पद्मावती के मुख के लिए सारे पदार्थ मानो दर्पण हे रहे थे। सब मे पद्मावती का ही रूप चमकता था।

पद्मावती का मुख सरोवर की वस्तुओं में प्रतिबिम्बित होकर दिखलाई देता था। कविवर जायसी यहाँ पदमावती की रूप- विशेषता प्रकट करते हैं। पदमावती के नेत्र सरोवर में कमलों के रूप में पतिबिम्बित थे। उसका शरीर ही सरोवर में • प्रतिबिंबित निर्मल जल था। उसका हास ही मानो सरोवर में प्रतिबिम्बित हंस थे। उसके दाँत सरोवर में नग और हीरों के रूप में प्रतिबिम्बित हो रहे थे।

विशेषताः

1. यहाँ परमात्मा का विश्व - प्रतिबिम्बि भाव व्यक्त होता है।

2. पद्मावती के परमात्मा तत्व की चर्चा हुई है।

****

प्र.1. 'विद्यापति मैथिल कोकिल कहलाते हैं, कैसे?

(अथवा)

विद्यापति की पदावली का मूल्यांकन कीजिए।

रूपरेखा : -

1. प्रस्तावना
2. पदावली का रूप
3. पदावली की हस्तलिखित पोथियाँ
4. पदावली की भाषा
5. पदावली की विशेषता
6. उपसंहार

1. प्रस्तावना :

यद्यपि विद्यापति लगभग एक दर्जन संस्कृत ग्रंथों की रचना की थी, तथापि उनकी प्रसिद्धि का खास कारण है उनकी पदावली। गाने योग्य छंद पद कहे जाते हैं। विद्यापति ने जितने छंद बनाए, सभी संगीत के सुर - लय से बँधे हुए - हैं।

विद्यापति ने कविता में अपना आदर्श जयदेव को माना है - लोग इन्हें 'अभिनय जयदेव' कहते भी थे। अतः जयदेव - के ही समान वे संगीत - पूर्ण कोमलकांत पदावली में श्रृङ्गारिक रचना करते थे। जैसाकि पहले लिखा जा चुका है, दरभंगा के वर्तमान अधिपति के पूर्वपुरुष नरपति ठाकुर के समय में लोचन नामक एक कवि थे। उन्होंने अपनी 'रागतरंगिणी' नामक पुस्तक में लिखा है कि सुमति नामक एक कलाविद् कायस्थ कत्थक के लड़के जयत को राजा शिलसिंह ने विद्यापति के निकट रख दिया था। विद्यापति पद तैयार करते थे, जयत उसका 'सुर' ठीक करता था।

सुमति सुतोदय जन्मा जयतः शिवसिंहदेवेन।

पंडितवर कविशेखर विद्यापठये तु सन्यस्तः॥

बिना संगीत का मर्म जाने संगीत की रचना नहीं की जा सकती। मालूम होता है, विद्यापति स्वयं भी गान विद्या में पारंगत थे। विद्यापति के पदों में कहीं-कहीं छंदोभंग से दीख पड़ते हैं। किन्तु यथार्थतः ऐसी बात नहीं है। संगीत के सुर - लय के अनुसार जो पद बनाए जाते हैं, उनमें 'ध्वनि' का ही विचार किया जाता है, अक्षर और मात्रा का नहीं। इसी से संगीत से अपरिचित व्यक्तियों को पदों में छंदोभंग का आभास हो जाता है।

2. पदावली का रूप:

विद्यापति ने कितने पद रचे थे, इसका भी अभी तक पूरा पता नहीं चला है। श्री नगेंद्रनाथ गुप्त ने 945 पदों का संग्रह प्रकाशित किया था। बाबू ब्रजनंदन सहायजी का संग्रह इससे बहुत छोटा है, तथापि उसमें कुछ ऐसे पद हैं, जो गेन्द्रनाथ गुप्त वाले संस्करण में नहीं हैं। सहायजी के नए पदों में नचारियों की ही प्रधानता है। किन्तु अभी तक विद्यापति के बहुत से अनूठे पद अप्रकाशित ही हैं। मिथिला की

स्त्रियाँ जिन पदों को विवाह के अवसर पर गाती हैं उनका तथा बहुत सी नचारियों का, अभी संकलन नहीं हुआ है।

पदावली के प्राचीन संस्करणों को देखने से पता चलता है, कि विद्यापति ने पदों की रचना विषय विभाग के अनुसार नहीं की थी। जब वे उमंग में आते थे, तब रचना कर डालते थे। पीछे लोगों ने उन्हें अलग - अलग विभाग कर सजा लिया।

3. पदावली की हस्तलिखित पोथियाँ :

यों तो विद्यापति के अधिकांश पद लोगों को कंठस्थ ही है और उन्हीं का संग्रह 'पदकल्पतरु' आदि बँगला के प्राचीन संग्रह ग्रंथों में है, किन्तु हाल में तीन प्राचीन हस्तलिखित मिले हैं, जिनसे विद्यापति के कितने नवीन पद प्राप्त हुए हैं, एवं पदावली की प्रामाणिकता का पूरा पता चला है।

उन ग्रंथों में सबसे प्राचीन और पौराणिक तालपत्र पर लिखी हुई एक पोथी है। यह पोथी भी विद्यापति लिखित 'भागवत' के साथ तरौनी ग्राम के स्वर्गीय पंडित लोकनाथ झा के घर में सुरक्षित पाई गई है। कहा जाता है कि विद्यापति के प्रपौत्र ने इसे लिखा था। इस पोथी की लिपि और उसके तालपत्र को देखने से मालूम होता है कि कम से कम तीन सौ वर्ष का यह प्राचीन है। लापरवाही से रखने के कारण यह पोथी जीर्ण शीर्ण हो गई। पहला और दूसरा पत्र गायन है। फिर नयाँ नहीं है. इसके बाद 81 से लेकर 99 पत्र एक बार ही नहीं है।

4. पदावली की भाषा :

पदावली की भाषा भी अब तक विवादग्रस्त रही है। बंगाली विद्यापति को बँगला का प्रथम कवि या बंगभाषा का प्रवर्तक मानते हैं। इसीलिए उन्होंने विद्यापति को बंगाली सिद्ध करने की भी चेष्टा की थी। किन्तु अब तो यह सब प्रकार सिद्ध हो

गया कि विद्यापति मैथिल थे। मैथिलों की एक खास बोली है - उसे मैथिली कहते हैं। विद्यापति भी मैथिल थे, अतः मैथिल लोग इन्हें अपनी बोली मैथिली का प्रथम कवि मानते हैं, यथार्थ में यही ठीक है। अतः मैथिल लोग इन्हें अपनी बोली मैथिली का प्रथम कवि मानते हैं, यथार्थ में यही ठीक है।

किन्तु यह मैथिली बोली किस भाषा की शाखा है - बंगभाषा की या हिन्दी भाषा की ? बाबू नगेन्द्रनाथ गुप्त ने मैथिली को ब्रजबोली (या हिन्दी) की एक शखा माना है। गुप्तजी 'प्राचीन विद्या महार्णव' कहे जाते हैं। उनका निर्णय अधिक मूल्य रखता है। अधिकांश विद्वानों की राय भी गुप्तजी से मिलती है। मिथिला बंग देश से सटी हुई है - विद्यापति का जन्म दरभंगे में हुआ था, जो द्वार बंग या बंगला का था। जिस प्रकार कोई हिन्दुस्तानी अँगरेजी पोशाक पहनकर अँगरेज नहीं बन जा सकता, उसी प्रकार मैथिली हिन्दी को छोड़कर बंगभाषी नहीं बन सकते। हाँ बंगभाषा के संसर्ग से इसमें मिठास अवश्य आ गई है।

पदावती की भाषा आजकल की मैथिती से कुछ भिन्न है। यह स्वाभाविक भी है। विद्यापति को हुए पाँच सौ वर्ष हुए। इन पाँच सौ वर्षों में भाषा में अवश्य कुछ न कुछ परिबर्तन होना सम्भव है। कुछ मैथिल महाशय विद्यापति के पदों की भाषा को तोड़ फोड़कर आजकल की मैथिली बोली से मिलाने का अनुचित प्रयत्न करते हैं।

विद्यापति की भाषा की दुर्दशा भी खूब हुई है। बंगालियों ने उसे ठेठ बंगला रूप दे दिया है, मौरंगवालों ने मॉरंग का रंग चढ़ाया है. बाबू ब्रजनंदन सहायजी ने उस पर भोजपुरी की कलई की है और आजकल के मैथिल उस पर अ मैथिली का रोगन चढ़ा रहे हैं। भगवान विद्यापति की कोमलकांत पदावतीकी रक्षा करें।

5. पदावली की विशेषता :

(क) भावपक्ष:

विद्यापति की पदावली अपना खास स्वरूप, अपना खास रंग-ढंग रखती है। वह कहीं भी रहे, आप उसे कितने ही कविताओं में छिपाकर रखिए, वह स्वयं चिल्ला उठेगी में हिन्दी कोकित की काकती हूँ। जिस प्रकार हजारों पक्षियों के कलरव को चीरती हुई, कोकित की काकती, आकाश पाताल को रसप्लावित करती, अलग से अलग अपना स्वतंत्र अस्तित्व प्रकट करती है, उसी प्रकार विद्यापति की कविता भी अपना परिचय आप देती है। बंगाल के यशोहर जिले में बसंत राय नामक एक कवि हो गये हैं। विद्यापति के पदों का प्रचार देखकर आपने भी विद्यापति के नाम से कविता करना प्रारंम्भ कर दिया था। किन्तु वे अपनी कविताएँ विद्यापति की कविता में नहीं खपा सके, विद्यापति की भाषा उनकी खास अपनी भाषा है, उनकी वर्णन प्रणाली उनकी खास वर्णन प्रणाली है, उनके भाव स्वयं उनके हैं। उनकी पदावली पर "खास की मुहर लगी हुई है। बंगाल के सैकड़ों कवियों ने इनके अनुकरण पर कविताएँ की। किन्तु कोई भी इनकी छाया न छू सके।

विद्यापति एक अजीब कवि हो गए हैं। राजा की गगनचुंची अट्टालिका से लेकर गरीबों की टूटी हुई फूस की झोपड़ी तक में उनके पदों का आदर है। भूतनाथ के मंदिर और 'कोहबर- घर' में इनके पदों का समान रूप से सम्मान है। कोई मिथिला में जाकर तमाशा देखे। एक शिवपुजारी डमरू हाथ में लिए, त्रिपुंड चढ़ाए, जिस प्रकार 'कखन हरब दुख मोर है भोलानाथ' गाते - गाते तनमय होकर अपने आपको भूल जाता है, उसी प्रकार कलकंठी कामिनियाँ नववधू को कोहबर में ले जाती हुई "सुंदरि चललिहुँ पहु- घर ना, जाइतहि लागु परम ढरना' गाकर नव वर-वधू के हृदयों को एक अव्यक्त आनन्द - स्रोत में डुबो देती हैं. जिस प्रकार नवयुवक "ससन - परस

खसु अम्बर रे देखलि धनि देह" पढ़ता हुआ एक मधुर कल्पना से रोमांचित हो जाता है, उसी प्रकार एक वृद्ध "तातल सैकत बारिबुन्द सम सुत मित रमनि समाज, ताहे बिसारि मन ताहि समरपिनु अब मझु हब कौन काम, माधव, हम परिनाम निरासा" गाता हुआ अपने नयनों से शत शत अश्रुबूँद गिराने लगताहै। विद्वद्वर ग्रियर्सन का यह कहाना कितना कत्य है -

2
Even when the sun of Hindu - religion is set, when belief and faith in Krishna and in that medicine of 'disease of existence' the hymns of Krishna's love, is extinct, still the love borne for songs of Vidyapati in which be tells of Krishna & Radha will be never diminished.

डॉक्टर ग्रियर्सन के कथन का प्रमाण बंगाल में जाकर देखिए। सहस्र - सहस्र हिन्दू आज तक विद्यापति के राधा - कृष्ण विषयक पदों का कीर्तन करते हुए अपने आपको विस्मरण कर देते हैं। एक जगह पुनः आप लिखते हैं -

2
The glowing stanzas of Vidapati are read by the devout Hindu with a litte of the baser part of human sensousness as the songs of the Solomon by the Christian priests.

(ख) कलापक्षः :

विद्यापति की उपमाएँ अनूठी और अछूती हैं, उनकी उत्प्रेक्षाएँ कल्पना के उत्कृष्ट विकास के उदाहरण हैं, रूपक का इन्होंने रूप खड़ा कर दिया है। स्वभावोक्ति से इनकी सारी रचनाएँ ओत-प्रोत हैं, वृत्यानुप्रास इनके पदों का स्वाभाविक आभूषण है, प्रधान काव्यगुण प्रसाद और माधुर्य इनके पद पद से टपकते हैं, प्रकृति - वर्णन में तो इन्होंने कमाल किया है - इनका वसंत और पावस काल का वर्णन पढ़कर मंत्रमुग्ध हो जाना पड़ता है। इनके वसंत और पावस में मिथिला की खास छाप है। वसंत के समय में मिथिला की शस्यश्यामला मही जिस प्रकार अलंकृत और आभूषित हो जाती है, वह दर्शनीय है। पावस में, हिमालय निकट होने के कारण, यहाँ

बिजलियाँ बड़ी जोर से कड़कती हैं प्रायः कुलिशपात होता है। विद्यापति ने इसका बड़ा ही अपूर्व वर्णन किया है। विद्यापति का मिलन और विरह का वर्णन भी देखने योग्य है। हिन्दी कवियों ने विरह के नाम पर, हाय-हाय का ही बवंडर उठाया है - उनके विरह वर्णन में, घनआनंद आदि दो - चार को छोड़कर, हृदय - वेदना का सूक्ष्म विश्लेषण प्रायः नहीं देखा जाता। विद्यापति का विरह - वर्णन प्रेमिका के हृदय की तस्वीर है- उसमें वेदना है, व्याकुलता है, प्रियतम के प्रति तल्लीनता है। कोरी हाय - हाय वहाँ है नहीं।

6. उपसंहार :

विद्वान राष्ट्रभाषा के प्रेमियों के निकट उपस्थित करते हुए विनम्र शब्दों में प्रार्थना करते हैं, कि जिस कविता की माधुरी पर मुग्ध होकर महाप्रभु चैतन्य देव गाते - गाते मूर्च्छित हो जाते थे, जिस कविता की खूबियों पर विदेशी विद्वान् ग्रियर्सन लोट- पोट थे, जिस कविता के एकमात्र आधार पर मैथिली बोली आज कलकत्ता विश्वविद्यालय में वह स्थान प्राप्त कर सकी है, जिस स्थान की प्रप्ति के लिए हिन्दी भाषी प्रांतों के विश्वविद्यालय में ही, माँ हिन्दी तड़प रही है, हिन्दी के जयदेव, मैथिल - कोकिल विद्यापति की उस कविता को - उस कोमल - कांत - पदावली को - आप उपेक्षा की दृष्टि से न देखिए। हिन्दी में क्या नहीं है - सूर्य है, चंद्र है, तारे हैं, एक नवीन 'नभमंडल' भी प्राप्त हुए हैं, किन्तु आपका काव्योद्यान आज कोकिलविहीन है - नहीं कोकिल है अवश्य, किन्तु आप अभी तक अनजाने उसे भूले हुए हैं। अहा हा ! सुनिए, सुनिए उस कोकिल की वह काकली। देखिए काव्य - उद्यान का वसंत प्रभात। मैथिल कोकिल विद्यापति की देन हिन्दी साहित्य के लिए अनुपम देन है।

प्र. 1. भ्रमरगीत के अर्थ विस्तार पर चर्चा कीजिए।

रूपरेखा

1. प्रस्तावना

2. भ्रमर का प्रतीकार्थ

3. भ्रमर प्रतीकार्थ कृष्ण

4. उपसंहार

1. प्रस्तावनाः भ्रमरगीत का अर्थ -

'भ्रमर' श्यामवर्ण का उडनेवाला एक जीव होता है। उड़ते समय वह गुंजार भी करता है। 'मधुवृत्त', 'मधुकर', 'मुधुप', 'अति', 'षटपद', 'चंचरीक', 'अलिंद', 'सारंग', 'भौरा', 'भृंग' आदि नामों से भी वह प्रसिद्ध है। उसके शरीर पर पीत रंग का एक सूत्र होता है। 'गीत' का अर्थ है- 'गाना'। अतः 'भ्रमरगीत' का शाब्दिक अर्थ होता है- 'भ्रमर का गाना' अथवा 'भ्रमर को लक्ष्य करके गाया हुआ गान'।

'भ्रमरगीत' शब्द 'भ्रमर' और गीत दो शब्दों के योग से होता है। हिन्दी साहित्य में उपालम्भ काव्य के रूप में 'भ्रमरगीत' का विशेष महत्व है।

2. भ्रमर का प्रतीकार्थः उद्धव :

काव्य में 'भ्रमर' शब्द का प्रयोग कृष्ण और उनके सखा उद्धव केलिए हुआ है। कृष्ण श्याम वर्ण के हैं और वे पीताम्बर धारण करते हैं। कृष्ण के मित्र उद्धव भी श्यामवर्ण के होकर पीताम्बरधारी भी हैं। उद्धव का वर्ण और बेष भ्रमर के समान है। साथ ही वे योगसाधना में रत रहकर कमल- संपुट में बन्द हो मौन- समाधि में

मग्न होने वाले भ्रमर से साम्य रखते हैं। आत: 'भ्रमरगीत' काव्य में उद्धव को 'भ्रमर' के प्रतीकार्य में सम्बोधित किया गया है।

इस प्रकार 'भ्रमरगीत' का अर्थ "भ्रमर को लक्ष्य करके लिखा गया गान" माना गया है। भ्रमर के प्रतीकार्य में उद्धव को स्थापित करती हुई गोपियाँ कहती हैं

मधुकर! जानत है सब कोई

जैसे तुम औ मीत तुम्हारे, गुननि निगुन हो दोऊ।

पाये चोर हृदय के कपटी तुम कारे अस दोऊ।

3. भ्रमर का प्रतीकार्थः कृष्ण

भ्रमरगीत में कृष्ण को भ्रमर के प्रतीकार्य में बताया गया है। श्रीकृष्ण का वर्ण भ्रमर के समान श्याम है। वे पीताम्बरधारी हैं और भ्रमर के शरीर पर पीत चिह्न होते हैं। अपने स्वर गुंजार से भ्रमर लोगों के मन को मुग्ध करता है। श्रीकृष्ण अपने मनोहर मुरलीरव से सर्वजीवों को मोहित कर लेते हैं। जिस प्रकार भ्रमर एक पुष्प का प्रेम ठुकराकर दूसरे पुष्प पर चला जाता है, उसी प्रकार कृष्ण गोपियों के प्रेम को ठुकरा कर मथुरा चले जाते हैं। भ्रमर पुष्प - रस चुराता है तो कृष्ण गो - रस की चोरी करते हैं। पुष्प-रस का आस्वादन कर और फिर उसे ठुकरा कर भ्रमर शठता का व्यावहार करता है। श्रीकृष्ण गोपियों के साथ प्रेम करके उनको छोड जाते हैं। ऐसा करना भी शठता ही है।

कोउ कहै री। मधुप भेस उन्हीं को धारयो।

स्याम पीत गुजार बैन किकिन झनकारयौ।

वापुर गोरसि चोरि कै आयो फिरि यहि देश।

इनको जनि मानहु कोऊ कफरी इनको भेस चोरि जनि जा कछु।

जनि पहसहु मम पाँव रे हम मानत तुम चोर।

तुमही - रूप कपटी हुते मोहन नन्दकिशोर।

4. उपसंहार

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'भ्रमर' श्रीकृष्ण और उद्धव दोनों के प्रतीकार्थ में प्रयुक्त हुआ है। डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार 'भ्रमर' का अर्थ 'पति' अथवा 'नायक' माना जाता है। भ्रमर शब्द भी अर्थ - विकास की दृष्टि से भ्रमर नामक कीट से अर्थ विस्तार करके कृष्ण का पर्याय हुआ और तब पति का भी पर्याय हो गया। लोक गीतों में भी 'भ्रमर' - 'भ्रमर जी' हो कर पति के लिए रुढ़ हो गया है। श्रीकृष्ण गोपियों के परम पति और नायक हैं। 'भ्रमर' शब्द को पति या 'नायक' अर्थ में स्वीकार किया जाय तो 'भ्रमरगीत' का आशय होगा - "पति या नायक को लक्ष्य करके लिखा गया गान"।

हिन्दी - काव्य में कृष्ण, राधा और गोपियों के प्रेम-प्रसंग को लेकर उद्धव और भ्रमर के माध्यम से जो लिखा गया, वह सब 'भ्रमरगीत' क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। भ्रमर षटपद होता है। अतः भ्रमरगीत के लिए षटपदी छन्द विशेष है। इस छन्द में छः चरण होते हैं। लय और गति की दृष्टि से इसके प्रथम दो चरण अर्द्धाली के रूप में होते हैं। भ्रमरगीत लिखते समय सारे कवियों ने भ्रमरगीत - छन्दों को नहीं अपनाया। लेकिन भाव और कला दोनों ही दृष्टियों से भ्रमरगीत काव्य अत्यन्त महत्व रखता है।

ज्ञान पर प्रेम की, और मस्तिष्क पर हृदय की विजय दिखा कर निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना की अपेक्षा सगुण साकार ब्रह्म की भक्ति भावना की श्रेष्ठता का

प्रतिपादन करना भ्रमरगीत काव्य की विशेषता है। काव्य - रचना में कवि सूरदास का उद्देश्य भी यही है।

प्र 2. भ्रमरगीत की कथा और स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

रूपरेखा :

1. संक्षिप्त कथा

2. श्रीकृष्ण का सन्देश

3. मूलस्रोत भागवत

4. काव्य का प्रतिपाद्य

5. प्रेमानुभूति

6. उपसंहार

1. संक्षिप्त कथा :

'भ्रमरगीत' सूरसागर की सर्वोत्कृष्ट रत्नराजि है। यह विप्रलम्भ श्रृगार का काव्य है। कृष्ण गोपियों से प्रेम- क्रीडाएँ करके उनको अपने वियोग में व्यथित होते छोड कर मथुरा चले जाते हैं। मथुरा में कंस का वध करके राजकाज में वे व्यस्त हो जाते हैं। अतः उनको गोकुल लौटने का अवसर नहीं मिलता। तब वे अपने ज्ञानी मित्र उद्धब को गोकुल में माता-पिता, बाल-बाल और गोपिय को सांत्वना देने के लिए भेजते हैं। गोकुल मे जाकर उद्धव का गोपियों से बाद विवाद होता है। उस वाद विवाद में उद्धव हार जाते हैं और गोपियों की प्रेम भावना में निमग्न हो कर वे मथुरा लौट जाते हैं।

2. श्रीकृष्ण का सन्देश

कृष्ण उद्धव को ब्रज में जाकर माता-पिता की कुशलक्षेम जानने और उनको सान्त्वना देकर सन्तुष्ट करने को प्रेरित करते हैं। साथ ही वे उद्धव से यह भी कहते हैं कि वे गोपियों को समझा-बुझा कर उनकी वियोग पीडा का शमन करें और सान्त्वना प्रदान करें।

3. मूलस्रोत भागवत :

भ्रमरगीत का मूल स्रोत व्यास विरचित श्रीमद्भागवत है। भागवतकार गोपी- उद्धव संवाद के बीच एक भ्रमर को ला देते हैं। भ्रमर उडता हुआ आता है और एक गोपी के चरण को कमल समझ कर उस पर बैठ जाता है। गोपियाँ उद्धव को छोड़कर उस भ्रमर के पीछे पड जाती हैं। भ्रमर को लक्ष्य करके वे कृष्ण औ उद्धव को खरी खोटी सुनाने लगती हैं। गोपियों के समक्ष उद्धव का सारा ज्ञान - गर्व चला जाता है। भागवत के उस मूल कथानक के आधार पर 'भ्रमरगीत' की रचना हुई हैं।

4. काव्य का प्रतिपाद्य : -

सूरदास के 'भ्रमरगीत सार' के साथ हिन्दी काव्य में भ्रमरगीत की परम्परा आरम्भ होती है। ज्ञान के ऊपर भक्ति का विजय घोष इस काव्य की विशेषता है। तर्कशैली का परित्याग करके नाटकीय विधान एव सरस भाषा के आधार पर ज्ञानमार्ग की उपेक्षा भक्तिमार्ग की श्रेष्ठता भ्रमरगीत काव्य का प्रतिपाद्य विषय है।

प्रज्ञाशील कवि सूरदास गोपियों द्वारा भक्तिरस की मधुरता का प्रतिपादन कराते हैं। गोपियाँ अपने भोलेपन, अपनी सरलता एवं कृष्ण प्रेम की अनन्यता के द्वारा उद्धव जैसे ज्ञानी को निरुत्तर करके भक्तिरस में तन्मय भी करा देती हैं।

सुन गोपिन को प्रेम नेम ऊधो को भूल्यो।

गावत गुन गोपाल फिरत कुंजनि में भूल्यो।

छन्न गोपिन के पग धैरै धन्य तिहारो प्रेम।

कृष्ण का बाल्यकाल गोकुल में व्यतीत होता है। वहीं साथ- साथ खेलते-खाते और गायें चराते हुए उनका गोकुल के ग्वाल एवें वहाँ की ग्वालिनों से प्रेम हो जाता है। लडकपन का साहचर्य - प्रेम किसी भाव में नहीं छूट सकता हैं। इसी लिए उद्धव गोपियों की विवशता को समझ पाते हैं -

लरिकाई को प्रेम कहो अलि कैसे छूटे?

परिस्थितियों के वश में पडकर लडकपन के साथी बिछुड गये। एक दूसरे की याद करके वे सदैव दुःखी बने रहते हैं। बस, उनके वियोग की कथा ही 'भ्रमरगीत सार' का प्रतिपाद्य विषय है।

5. प्रेमानुभूति :

'भ्रमरगीत सार' में श्रीकृष्ण के बाल्यकाल एव यौवनकाल के मनोहर चित्र हैं। कृष्ण उद्धव के समक्ष अपने प्रेम की चर्चा करते हुए कहते हैं -

उधो मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।

हंससुता की सुन्दर कगरी, अरु कुंजन की छाही।

वे सुरभी वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाही।

यह मथुरा कंचन की नगरी मनि मुकताहल जाहीं।

जबहिं सुरति आवृति वा सुख की जिय उमगत तम नाहीं।

गोपियों और कृष्ण का सम्बन्ध आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध के समान है। गोपियों के प्रेम में आत्मोत्सर्ग की भावना बढ़ती जाती है। कृष्णभक्ति में विह्वल हो गोपियाँ कहती हैं -

ऊधो, भन नाहीं दस बीस

एक हुतो सो गयो स्याम संग को आराधे ईस?

कृष्ण जब से मथुरा गये हैं, तब से गोपियों के नेत्रों में वर्षा आ जाती है। उनकी आँखें श्रावण - भादों के मेघों के रूप में बरसती रहती हैं। क्षण भर के लिए भी आँसू बन्द नहीं होते हैं -

निसि दिन बरसत नैन हमारे,।

सदा रहति पावस रितु हम पै, जब तैं स्याम सिधारे।

द्दृग अंजन लागत नहिं कबहुँ, उर कपोल भए कारे।

कंचुकि पट सूखत नहिं कबहूँ, उर बिच बहत पनारे।

गोपियाँ अपनी विरह-वेदना के सम्बन्ध में ढिंढोरा पीटती हुई कहती हैं 'प्रीति करि काहू सुख न लहयौ'।

6. उपसंहार :

गोपियों की प्रेमतन्मयता को देखकर उद्धव का ज्ञान-गर्व चला जाता है और उनकी प्रेम भक्ति पर आस्था हो। जाती है। वे मथुरा लौटकर गोपियों की दशा का वर्णन करते हैं और कृष्ण को निष्ठुर बताते हैं। भागवत का उद्देश्य केवल धर्म साधना है। भगवत की कथा समस्त भ्रमरगीतों का आधार है। -

गोपियों के प्रेमानुभूति के सामने उद्धव निरुत्तर एवं पराजित- से दिखाई देते हैं। गोपियों की प्रेम दिहलता देख कर उद्धव गद्‌गद्‌ हो जाते हैं। और प्रेमाश्रुपूरित लौट कर कृष्ण के चरणों में गिर पड़ते हैं। कृष्ण पीताम्बर से उन के आँसू पोछ कर उनकी दशा पूछते हैं।

प्रेम विह्वल ऊधो गिरे नैन जैल छाय

पोछि पीत पट सो कही, आए जोग सिखाय

यही निर्गुण के ऊपर सगुण का और ज्ञान के ऊपर भक्ति की श्रेष्ठता और सरलता की प्रतिष्ठा है।

प्र. 3. श्रीमदभागवत्‌ और सूरदास के 'भ्रमरगीतों' की तुलना कर स्पष्ट कीजिए कि सूरदास का भ्रमरगीत किन-किन बातों में मौलिक है।

रूपरेखा :

1. प्रस्तावना
2. भागवत की कथा
3. भागवतकार का उद्देश्य
4. श्रीमद्भागवत्‌ और सूरदास के भ्रमरगीत के कथानक की तुलना
5. सूरदास की मौलिकता
6. सूरदास के तीन भ्रमरगीत
7. उपसंहार

1. प्रस्तावना :

हिन्दी साहित्य में उपालम्भ काव्य के रूप में 'भ्रमरगीत' का विशेष महत्त्व है। 'भ्रमरगीत' शब्द 'अमर' और 'गीत' दोनो शब्दों के योग से बना है। 'भ्रमरगीत' शब्द का अर्थ - 'भ्रमर का गान' अथवा 'भ्रमर को लक्ष्य करके गाया हुआ गान' होता है।

'भ्रमरगीत' विप्रलम्भ श्रृंगार का काव्य है। कृष्ण गोपियों से प्रेम- क्रीडायें करके उनको अपने वियोग में तडपते छोड कर मथुरा चले जाते हैं। मथुरा में कंस का वध करके राज-काज में वे इतना अधिक व्यस्त हो जाते हैं कि उन को गोकुल लौटने का अवसर ही नहीं मिलता। वे अपने ज्ञानी मित्र उद्धव को गोकुल में माता-पिता, ग्बाल-बाल और गोपियों को सान्त्वना देने के लिए भेजते हैं। 'गोकुल में उद्धव का गोपियों से वाद-विवाद होता है। उस वादोपबाद में उद्धव हार जाते हैं और गोपियों की प्रमानुभूति में निमग्न होकर वे मयुरा लौट जाते है।

'भ्रमरगीत' का इतना ही सक्षिप्त और सीधा कथानक है। इसका मूल स्रोत श्रीमद्भागवत् है।

2. भागवत की कथा :

भागवत में कृष्ण उद्धव को ब्रज में जाकर माता- पित्ती की कुशल क्षेम जानने और उनको समझा बुझाकर प्रसन्न एवं संतुष्ट करने को प्रेरित करते हैं। साथ ही वे उद्धव को और बताते हैं कि वे गोपियों की वियोगावस्था का शमन करें और सान्त्वना प्रदान करें।

भागवत की गोपियाँ पहले कृष्ण की कुशलक्षेम पूछती हैं और तदुपरान्त उन्हें उपालम्य देती हुई विरह वेदना से व्याकुल हो रो पड़ती हैं। गोपियों के अनन्य प्रेम को देखकर उद्धव मुग्ध हो जाते हैं और उनकी प्रशंसा करने लगते हैं। उसी समय कहीं से एक भ्रमर उड़ता हुआ आता है और एक गोपी के पैर पर बैठ जाता है। वह गोपी भ्रमर को लक्ष्य कर पुरुष द्वारा प्रेम के क्षेत्र में विश्वासधात को लेकर उसकी

भर्त्सना करती है। गोपियों की दृढ़ प्रेमासक्ति देख कर उद्धव का हृदय उनके प्रति श्रद्धा से भर जाता है। वे ज्ञान, योग, कर्म आदि की तुलना में गोपियों की इस एकान्तिक भक्ति भावना की प्रशंसा करते हैं।

3. भागवतकार का उद्देश्य :

'भागवत' के उद्धव गोपियों को ज्ञान और योग का उपदेश देने नहीं आते। वे गोपियों को ज्ञान, योग और निर्गुण का उपदेश देना प्रारम्भ नहीं करते।

'भ्रमरगीत' की रचना में भागवतकार का उद्देश्य ज्ञान और भक्ति का द्वन्दव दिखाने का नहीं था। भागवत में ज्ञान, कर्म और भक्ति का सामंजस्य हुआ है। भागवतकार के अनुसार कृण का मथुरा- गमन सोद्देश्य है। गोपियों के प्रेम की दृढता को और भी अधिक गम्भीर एव गहन बनाना भागवतकार व्यासजी का उद्देश्य रहा।

भागवत में कृष्ण गोपियों को एकांत भक्ति की चित साधना सिखाना चाहते हैं और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे मथुरा चले जाते हैं। भागवतकार का उद्देश्य केवल धर्म-साधना का है। गोपियों के चित में स्थिरता लाने के लिए ही कृष्ण जान बूझ कर ब्रज से मथुरा चले जाते हैं।

4. 'श्रीमद्भागवत्' और सूरदास के 'भ्रमरगीत' के कथानक की तुलना

भ्रमरगीत का मूलस्रोत श्रीमद्भागवत् दशम स्कन्ध पुर्वार्ध के ४६ वें अध्याय में है, पिता तथा गोपियों को सान्त्वना प्रदान करें। उस आदेश के अनुसार उद्धव ब्रज पहुँचते हैं। वे वहाँ जाकर प्रजभूमि की कला झाँकी का दर्शन करते हैं। ये नन्द और यशोदा से मिलते हैं। कुशल क्षेम के पश्चात नन्दबाबा तथा यशोदा दुःख निवदेन

करते हैं। उन उनके भाग्य की सराहना करते हैं और फिर श्रीकृष्ण के आत्म स्वरूप होने पर एक व्याख्यान-सा देते हैं और बातें करते हुए रात्रि व्यतीत हो जाती है।

प्रातः काल गोपियों से उद्धव की भेंट होती है। वे कहती हैं "उन्होंने आप को माता पिता को सान्त्वना देने के लिए भेजा है। अब हम से क्या मतलब ?" बस, यहीं से उपालम्भ आरम्भ हो जाता है। गोपियाँ कृष्ण की लीलाओं का स्मरण करके ये उठती हैं। इसी समय एक भ्रमर आकर एक गोषी के पैर पर बैठ जाता है। उसी को संबोधित करके गोपियों पुरुषों द्वारा प्रेम में किये गये विश्वासघात को लक्ष्य बना कर उपालम्भ देती हैं।

उद्धव गोपियों की प्रेमानुभूति पर मुग्ध होते हैं और स्वयं व्रज रजकण होने की आकांक्षा प्रकट करते हैं जिससे वे प्राप्त कर सके। गोपियशान्त हो जाती हैं। कुछ महीनों बाद उपस जाने लगते ब्रजांगनाओं की चरणरज है तो गोपगण, नन्दबाबा, यशोदा आदि यही कहते हैं कि उन्हें मोक्ष की इच्छा नहीं है। वे सब यही चाहते हैं कि उन के मन की एक एक वृत्ति, एक एक संकल्प श्रीकृष्ण में ही लगे रहे।

सूरदास के उद्धव तो ब्रज जाने के लिए तैयार होते हैं। कृष्ण के मोह भरे वचनों को सुनकर वे मुस्कराते हैं और मन ही- मन ज्ञान-गर्व प्रकट करते हैं।

श्रीकृष्ण उद्धव से केवल सान्त्वना देने को ही नहीं कहते हैं, अपिंतु निर्गुण उपदेश की बात कहते हैं -

उद्धव ! यह मन निश्चय जानो।

पूरन ब्रह्मा सकल अविनासी ताके तुम हो ज्ञाता।

यह मत दै गोपिन कहँ आवउ॥

सूर की गोपियाँ मानों पहले से ही तैयार रहती हैं। वे उद्धव को आते ही घेर लेती हैं और मथुरा के यादवों पर व्यग्य करने लगती हैं।

“वह मथुरा काज की कोठरि जे आवें तो कारे।” सूरदास की गोपियाँ विकल और वाक्चतुरा हैं।

5. सूरदास की मौलिकता :

भागवतकार का उद्देश्य केवल धर्म साधना का है। कृष्ण गोपियें के चित में स्थिरता लाना चाहते हैं। भागवतकार के उद्धव गोपियों के कृष्ण प्रेम की सराहना करते हैं, जब कि सूरदास के उद्धव उनके कृष्ण प्रेम की निरर्थकता बताते हुए उन्हें ज्ञान और योग का उपदेश देने लगते हैं। गोपयिो के साथ उद्धव का उत्तर प्रत्युत्तर होता है। गोपियों की सरल निष्काम भक्ति के सामने उद्धव निरुत्तर एव पराजित से दिखाई देते हैं।

हम तौ दुहूँ भाँति फल पायौ।

जौ ब्रजराज मिलैं तो नीको नातरु जग जस गायौ।

गोपियों की प्रेम-बिह्नवलता को देखकर उद्धव गद्गद् हो जाते हैं और प्रेमाश्रुपूरित लौट कर कृष्ण के चरणों में गिर पड़ते हैं। कृष्ण अपने पीतमाम्बर से उनके आँसू पोंछकर उनकी दशा पूछते हैं।

प्रेम विह्नवल ऊधौ गिरे नैन जल छाय।

पोंछि पीत पर सों कही, आए जोग सिखाय।

मानो यही निर्गुण के ऊपर सगुण का, ज्ञान के ऊपर भक्ति की श्रेष्ठता और सरलता की प्रतिष्ठा है।

भ्रमरगीतसार में सूरदास ने नारी के तप और योग के स्थान पर उसके समर्पण और अनन्यता पर विशेष बल दिया है। उस सम्बन्ध में डॉ. उपाध्याय का कथन है- "पुराण और काव्य में जो अन्तर है वही भागवत और सूर के भ्रमरगीत में है।"

6. सूरदास के तीन भ्रमरगीत :

हिन्दी में सर्वप्रथम "भ्रमरगीत" रचने का श्रेय सूरदास को है। सूर के भ्रमरगीत में भागवत के भ्रमरगीत की अपेक्षा अनेक विशेषताएँ और मौलिकताएँ हैं।

सूरदास ने तीन भ्रमरगीतों की रचना की।

(क) प्रथम भ्रमर गीत : - सूरदास का प्रथम भ्रमरगीत भागवत के भ्रमरगीत का अनुवाद मात्र है। इसकी रचना दोहा, 'चौपाई' तथा 'सार' छन्द में है। इस में न तो सूर की नयी मान्यताएँ हैं या न ज्ञान वैराग्य की चर्चा ही।

(ख) द्वितीय भ्रमरगीत: :- सूर का द्वितीय भ्रमरगीत केवल एक ही पद में लिखा गया है। इस में उद्धव का गोपियों के प्रति उपदेश, गोपियों के उपालम्भ, उद्धव का मथुरा गमन एवं श्रीकृष्ण के समक्ष गोपियों के विरह का वर्णन तथा उसे सुन कर श्रीकृष्ण का मूर्च्छित हो जाना आदि सब एक ही छन्द में वर्णन किया गया है। इस में न तो भ्रमर का प्रवेश होता है और न गोपियाँ उपालम्भ ही देती हैं।

(ग) तृतीय भ्रमरगीत - सूर ने इस भ्रमरगीत को काव्यत्व का रूप प्रदान किया है। इस में कथा एवं भाव का क्रमबद्ध संयोजन है। इस काव्य में सूरदास भ्रमर के माध्यम से कृष्ण और उद्धव को मन भर कर उपालम्भ दिलाते हैं। अन्त में उद्धव के ज्ञानयोग और निर्गुणोपासना की पराजय होती है। सूरदास ने व्यास विरचित 'भ्रमरगीत' को परम्परानुसार - ग्रहण कर अपनी अद्भुत प्रतिभा से पूर्णता पहुँचा दी है।

7. उपसंहार

सूर के भ्रमरगीत का स्रोत व्यास विरचित भागवत तो है। सूर की कला में भगवत पुराण ने काव्यत्वका रुप धारण किया है। उन के युग में सगुण और निर्गुण की उपासना का भीषण द्वन्दव चल रहा था। सूरदास अपने भ्रमरगीत द्वारा निर्गुणोपासना का खण्डन करके साकारोपासना का प्रतिपादन किया है।

सूर के 'भ्रमरगीत' में ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को श्रेष्ठ सिद्ध किया गया है। ज्ञान का खंडन और भक्ति का मंडन हुआ है।

प्र. 4. 'भ्रमरगीत' के उद्भव और विकास पर समीक्षा कीजिए।

(अथवा)

भ्रमरगीत परम्परा में सूरदास का स्थान निर्धारित कीजिए।

(अथवा)

हिन्दी काव्य में भ्रमरगीत परम्परा पर प्रकाश डालिए।

रूपरेखा :

1. प्रस्तावना

2. भ्रमर का सांकेतिक अर्थ

3. भ्रमरगीत परम्परा का उद्भव-स्रोत

4. हिन्दी काव्य में भ्रमरगीत परम्परा का विकास

5. कुछ प्रमुख भ्रमरगीत

6. उपसंहार

1. प्रस्तावना :

भ्रमरगीत का शाब्दिक अर्थ है- 'भौरे का गीत' या 'भौरे से सम्बन्धित गीत'। भारतीय काव्य में 'भ्रमरगीत' एक विशेष प्रसंग से सम्बद्ध है। कृष्ण मथुरा चल कर राज-काज से व्यस्त हो, उद्धव के द्वारा ब्रजवासियों को सन्देश भेजते हैं। गोकुल आने पर गोपियाँ उद्धव के सम्मुख भ्रमर को सम्बोधित करके कुछ उपालम्भ देती हैं, जो अप्रत्यक्ष रूप से कृष्ण को ही दिये जाते हैं। यही प्रसंग 'भ्रमरगीत' के नाम से प्रख्यात हुआ है। इस प्रकार 'भ्रमरगीत' गोपी- उद्धव सवाद का सूचक है।

2. 'भ्रमर' का सांकेतिक अर्थ : -

गोपियाँ अपने उपालम्भ केलिए भ्रमर को ही क्यों चुनती है? बात यह है कि भारतीय श्रृंगार काव्य में भ्रमर सदा से ही रसिक वृत्ति का प्रतीक माना जाता है। खिले हुए पुष्पों का रस चूस कर विमुख हो जाना भ्रमंर के स्वभाव की बडी विशेषता है। कृष्ण और गोपियों का सम्बन्ध भी भ्रमर और कलिकाओं सा है। कृष्ण की अन्य विशेषताएँ भी भ्रमर में मिल जाती हैं। भौरा गुंजार करता है तो कृष्ण अपनी बाँसुरी के मधुर स्वर से गोपियों को आकर्षित करते हैं। भ्रमर और कृष्ण दोनों श्यामवर्ण के हैं। उद्धव भी भ्रमर का साम्य रखते हैं। इसी कारण भ्रमर के प्रतीकार्थ में उद्धव को भी लिया जाता है।

3.भ्रमरगीत परम्परा का उद्भव-स्रोत :

भ्रमरगीत परम्परा का मूल उद्भव - स्रोत श्रीमद्भागवत है। गोपियाँ व्यंग्य करती हैं। उनकी प्रत्येक उक्ति में विरह - वेदना, आत्म दैन्य, उपालंभ, प्रेमासक्ति और हास-परिहास का माधुर्य प्रस्फुटित होते हैं।

विसृज शिरसि पाद वेदम्यह चाटुकारै -

रनुनयविदुवस्ते ऽ भ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात।

स्वकृत इह विसृष्टापत्यन्यलोक।

व्यमृजद कृतचेता कि नु सन्थेयमस्मिन्?

प्रेम के क्षेत्र में भ्रमर का उल्लेख कालिदास कृत 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' मे प्राप्त होता है। भ्रमर आकर शकुन्तला के शरीर पर बैठ जाता है तो दुष्यंन्त ईर्ष्या पूर्वक कहता है -

चलापांगं दृष्टि स्पृशसि बहुधा वेपयुमती

रहस्यारुथीव स्वनसि मृदुकर्णन्तिकचरः

कर व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधुर

वय तत्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती॥

4. हिन्दी काव्य में भ्रमरगीत परम्परा का विकास :

कटक माझ कुसुम परगास, भ्रमर विकल नहिं पाबए पास।

भ्रमरा मेल घुरए सब ठाम तो हे बिनु मालती नहि बिसराम।

उद्धव- गोरी संबाद का इस छन्द में कोई उल्लेख नहीं है। फिर भी इस में भ्रमर सम्बन्धी धारण का प्रभाव अवश्य परिलक्षित होता है।

हिन्दीं में भ्रमरगीत परम्परा के प्रवर्तक का श्रेय महाकवि सूरदास को दिया जाता है। उनके प्रभाव से प्रायः अन्य सभी कृष्ण - भक्त कवियों ने इस प्रसंग पर थोडे बहुत पद लिखे हैं जिन में ये नाम उल्लेखनीय हैं - नन्ददास, परमानन्ददास, हित

बृन्दावनदास, हरिराय, रसखान, मुकुन्ददास, घासीराम आदि। आगे चलकर रीतिकालीन कवियों में देव, पदमाकर ग्वाल कवि, महाराज रघुराज सिंह आदि अनेक कवियों ने कुछ फुटकर छन्दों में भ्रमरगीत प्रसंग की चर्चा की है।

आधुनिक युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बदरीनारायण 'प्रेमधन', सत्यनारायण 'कविरत्न', जगन्नाथदास रत्नाकर, मैथिलीशरणगुप्त, हरिऔध, रामशंकर 'रसाल', द्वारिकाप्रसाद मिश्र, हरदेव प्रसाद, जगन्नाथ सहाय आदि कवियों ने उद्धव-गोपी-सवाद का वर्णन किसी न किसी रूप में किया है।

5. कुछ प्रमुख भ्रमरगीत

वैसे तो हिन्दी में प्रायः सभी भक्त एवं श्रृंगारी कवियों ने 'भ्रमरगीत' लिखे हैं। किन्तु विस्तृत रूप से इसी प्रसंग को लेकर काव्य रचना करनेवाले कुछ कवियों की चर्चा करें -

(क) सूरदास का भ्रमरगीत - सूरदास द्वारा रचित 'सूरसागर' में तीन 'भ्रमरगीत' उपलब्ध होते हैं। उनमें दो अत्यन्त संक्षिप्त हैं, किन्तु अन्तिम अत्यन्त विस्तृत है। प्रथम 'भ्रमरगीत' भागवत् से अनुवादित - सा है तथा यह चौपाई छन्द में रचितं है। दूसरा भ्रमरगीत पदशैली में है। तृतीय 'भ्रमरगीत' में लगभग चार सौ पद हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने 'भ्रमरगीत' को अलग 'भ्रमरगीत - सार' के नाम से संकलित किया है।

सरदास को भ्रमरगीत रचनां की प्रेरणा स्पष्ट ही भागवत पुराण से मिली होगी। भागवतकार का उद्देश्य केवल धर्मसाधना तथा कृष्ण की व्यापकता, सार्वकालिकता का रूप प्रतिपादन करना है। किन्तु सूरदास इसी से संतुष्ट नहीं होते। वे गोपियों के मुँह से ज्ञान की निन्दा, उसका उपहास और तिरस्कार भी करवाते हैं। यही मानों निर्गुण के ऊपर सगुण की, ज्ञान के ऊपर भक्ति की श्रेष्ठता और सरलता की

प्रतिष्ठा है। वे स्पष्ट रूप से ज्ञान को प्रेम की अपेक्षा हेय एवं त्याज्य सिद्ध करते हुए लिखते है।

आयो घोष बडो व्यापारी।

लादि खेप, गुन ज्ञान जोग की ब्रज में आय उतारी।

फाटक देकर हाटक माँगत भोरे निपट सु थारी।

इनके कहे कौन उहकावे ऐसी कौन अजानी।

अपनो दूध छौंडि को पीवै खार कूप को पानी॥

सूर भक्ति विरोधी 'निर्गुण' का गोपियों द्वारा उपहास भी करवाते हैं -

निर्गुन कौन देस को बासी ?

मधुकर! हँसि समुझाय सौह दै बूझति सौचत हाँसी।

को है जनक, जननि को कहयित, कौन नारि को दासी॥

काव्य की दृष्टि से भागवत की तुलना में सूरदास के भ्रमरगीत में अधिक स्वाभाविकता, रोचकता एव मार्मिकता है। चुटकीले व्यग्यों, मीठे उपहासों, भोली मनुहारों, क्रोधपूर्ण तिरस्कारों एव शोकपूर्ण अश्रुओं की अभिव्यक्ति के कारण 'भ्रमरगीत' काव्य के भावपद में विविधता आ गई है। भागवत पुरण में भ्रमरगीत के रूप में जो रस की एक बूँद. थी, वह सूरदास के ग्रमरगीत में आकर अथाह लहरों के रूप में उद्वेलित दिखाई पड़ती है।

(ख) नन्ददास का भ्रमरगीत - सूर के पश्चात नंददास का भ्रमरगीत महत्त्वपूर्ण है। यह नाटकीय प्रश्नोत्तरी शैली में रचा गया है। उद्धव गोपियों को ज्ञान का उपदेश

देते हैं। गोपियाँ उसका तर्कबद्ध खण्डन करती हैं। गोपियों के तर्क से पराजित हो कर उद्धव अपनी हार स्वीकार कर लेते हैं। गोपियों का तर्कबद्ध कथन देखिए -

जो भुख नाहि न हतो, कहाँ किन माखन खायो।

पाँयन बिन मो संग कहाँ वन को धायो।।

सूर की अपेक्षा नन्ददास के भ्रमरगीत में दार्शनिकता की प्रधानता है। सूर के भ्रमरगीत में कुब्जा और राधा दोनों का नाम आया है। परन्तु नन्ददास के भ्रमरगीत में राधा का नाम नहीं है। नन्ददास की गोपियों में सूर की गोपियो के व्यंग्य की अपेक्षा अधिक तीखापन है।

नास्तिक है जे लोग कहा जाने निज रूपै।

प्रगट भानु को छोडि गहत परछाई धूपैं।।

नन्ददास का 'भ्रमरगीत' अपनी मौलिकता में महत्त्वपूर्ण है। उस में तर्क निपुणता और दार्शनिकता के साथ - साथ सरलता और भाव - व्यंजना भी है। दार्शनिक वाद - विवाद कराकर अन्त में सगुण भक्ति की प्रतिष्ठा की है। 'भ्रमरगीत' छन्द का आविष्कार सर्व प्रथम नन्ददास के ही 'भ्रमरगीत' में मिलता है।

(ग) तुलसीदास - गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीकृष्ण गीतावली और कवितावली में 'भ्रमरगीत' प्रसंग का वर्णन किया है। कवितावली में गोपियों की मार्मिक व्यथा व्यक्त हुई है -

जोग कथा पठई ब्रज को सब सो।

तुलसी सो सुहागिनि नन्दलाल की।

'श्रीकृण गीतावली' में तुलसी ने 'भ्रमरगीत' के प्रसंग को बहुत विस्तार किया है। उनके 'भ्रमरगीत' में भ्रमर का प्रवेश नहीं होता। मर्यादा स्थापन की प्रकृति तुलसी की भ्रमरगीत की समस्त विशेषताएँ पाई जाती हैं। उनकी गोपियाँ सूर और नन्ददास की गोपियों की तरह उद्दण्ड और चंचल नही हैं। वे बडी ही विनम्रता से उद्धव से वार्तालाप करती हैं।

भक्तिकाल मे कृष्णदास, हरिराय, मलूकदास, मुकुन्ददास, घासीराम, रहीम, रसखान आदि ने भी भ्रमरगीत प्रसंग पर स्फुट छन्द लिखे।

(घ) रीतिकाल में भ्रमरगीत-काव्य :- रीतिकाल के कुछ कवियों ने भी भ्रमरगीत प्रसंग पर फुटकल रचनायें की हैं। इनकी रचनाओं में 'मधुकर', 'मधुप', 'भ्रमर' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। मतिराम, देव, भिखारी दास, धनानन्द, पद्माकर, सेनापति आदि कवियों ने भ्रमरगीत प्रसंग पर स्फुट छन्द लिखे हैं।

(ङ) सत्यनारायण 'कविरत्न' का भ्रमरदूत - आधुनिक युग के कवि श्री सत्यनारायण 'कविरत्न' के 'भ्रमरदूत' में मौलिक प्रसंगो का समावेश हुआ है। इस काव्य में न उद्धव है, न गोपियाँ, न ज्ञान योग, न भक्ति का वाद विवाद, न - निर्गुण - सगुण का खण्डन - मण्डन । यशोदा माता ही भ्रमरदूत बना कर कृष्ण के पास भेजती हैं। देश की सामाजिक और राजनीतिक अधोगति का चित्रण ही इसका मुख्य उद्देश्य है। कवि ने पुरानी परम्परा को छोड़ कर यशोदा को भारतमाता के रूप में प्रस्तुत किया है।

विलपति अति कलपति जबे लखी जननि बिज स्याम।

(च) रत्नाकरजी का उद्धव शतक - रत्नाकरजी ने अपने उद्धव शतक में पूर्ववर्ती सभी भ्रमर गीत काव्यों की - विशेषताओं का समन्वय करने का प्रयत्न किया है। यही कारण है कि इसमें सूरदासजी की भावत्मकता, नन्ददास की- सी तार्किकता

और रीतिकालीन कवियों का चमत्कार आदि सब गुण मिलते हैं। रत्नाकरजी के भ्रमर गीत की - विशेषता यह है कि इस में कृष्ण और गोपियों में तुल्यानुराग की प्रतिष्ठा की गई है। गोपियों के प्रेम में कृष्ण की व्याकुलता देखिए -विरह-विया की कथा अथाह महा, कहत बने न जो प्रवीन सुकवीनि सौ।

नैकु कही बैननि अनेक कही नैननि सौ, रही-रही सोऊ कहि दीनी हिचकानि सौ॥

रत्नाकर की गोपियो में भवावेश धिक मात्रा में है। उन में सूर की गोपियो का हृदय नन्ददास की गोपियों की बुद्धि और आधुनिक नारी के चतुर्य का मिश्रण है। भाषा में नवीन नवीन प्रयोग भी पाये जाते हैं।

(छ) हरिऔध का प्रियप्रवास - प्रियप्रवास में श्रृगार का चित्रण आधुनिक सुधारवादी दृष्टिकोण से किया गया है। नायिका वासना और प्रेम की सीमाओं से ऊपर उठ कर अपने विश्वप्रेम एवं लोकहित के भाव का परिचय देती है। प्रेम, स्नेह, वात्सल्य, मैत्री आदि भावों की व्यजना भी सफलतापूर्वक हुई है। 'प्रियप्रवास' में गोपियाँ उद्धव को उपालम्भ देने के स्थान पर अपनी हृदयस्थ प्रणय-भावना एव विरह वेदना की ही व्यजना करती हैं।

श्यामा बातें श्रवण करके बालिका एक रोई।

रोते-रोते अरुण उसके हो गये नेत्र दोनों।

ज्यों-ज्यों लज्जा-विवश वह थी रोकती वारिधारा।

त्यों-त्यों आँसू धिकतर थे लोचनों मध्य आते।

गोपियाँ अपनी अज्ञता स्वीकार करती हैं -

भोली भाली ब्रज अवनि क्या योग की रीति जाने।

कैसे बूझे अबुध अबला ज्ञान-विज्ञान की बात।।

हरिऔध की गोपियाँ अन्त में विश्वहित के लिए अपने सुख का बलिदान करना स्वीकार कर लेती हैं। व्यक्तिगत प्रेम की परिणति विश्वप्रेम में होती है।

मेरे जी में हृदय बिजयी विश्व का प्रेम जाग।

मैने देख परम प्रभु को स्वीय प्राणेश ही में।।

6. उपसंहार

इस प्रकार हिन्दी काव्य में भ्रमरगीत की दीर्घ परम्परा रही है। इस प्रसंग को हिन्दी में प्रचलित करने का श्रेय एकमात्र सूरदास को ही है। उनके भ्रमरगीत की मार्मिकता से ही परवर्ती कवि प्रभावित तथा प्रेरित हुए। भ्रमर की आड में सूरदास की गोपियों ने विरह वेदना, बिवशता, रोष, उपालम्भ, व्यंग्य, उपहास, आत्मदैन्य आदि विभिन्न भावों से युक्त जो युक्तियाँ कही हैं वे युग-युगों तक अमर रहनेवाली हैं।

सूर की गोपियाँ उद्धव से कहती हैं -

ऊधो मन नाही दस बीस

एक हुतो सो गयौ स्याम संग

इस में बढ़ कर प्रेम माधुरी की उक्ति और क्या हो सकती है!

प्र. 5. 'भ्रमरगीत-सार' विप्रलंभ श्रृंगार की प्रधान रचना है - समीक्षा कीजिए।

(अथवा)

'भ्रमरगीत-सार' में व्यक्त विप्रलंभ श्रृंगार का विवेचन कीजिए।

(अथवा)

'श्रृंगार रस के क्षेत्र में सूरदास की पैठ अनोखी है।' - इस उक्ति पर अपना विचार प्रकट कीजिए।

रूपरेखा : :

1. प्रस्तावना

2. उद्दीपन विभाव-विधान

3. हृदयग्राही विरह-वर्णन

4. शास्त्रीय नियमों का सफल पालन

5. संचारी भाव

6. आत्मोत्सर्ग की भावना

7. विरहाग्नि प्रेम की पुष्टि

8.धर्म का निर्वाह

9. वक्रतापूर्ण व्यंजना

10. सायुज्य मुक्ति

11. उपसंहार

1. प्रस्तावना

'भ्रमरगीत-सार' एक विप्रलम्भ श्रृंगार प्रधान रचना है। इस में विरह की समस्त दशाओं का सजीव उद्घाटन किया गया है। आचार्य शुक्ल का कथन है – न जाने कितने प्रकार की मानसिक दशाएँ ऐसी मिलेगी जिनके नामकरण तक नहीं हुए।"

2. उद्दीपन विभाव-विधान : -

कृष्ण के वियोग मे गोपियों की दशा चिन्तनीय हो जाती है। कृष्ण की उपस्थिति में जो वस्तुएँ प्रिय एव सुखदायक लगती थीं। कृष्ण के वियोग में वे सबा की सब वस्तुएँ दुःखदायी एव अप्रिय लगती हैं। वे उन्हें काटंखाने को बढ़ती - सी लगती हैं। विप्रलम्भ श्रृंगार का यह उद्दीपन विभाव विधान सूर के वियोग - श्रृंगार की अनुपम देन है।

बिनु गुपाल बैरिन भई कुजै।

तब ये लता लगति अति सीतल अब भई विषम ज्वाल की पुजै।।

3. हृदयग्राही विरह-वर्णन :

गोपियों की जाग्रदवस्था रोने में ही बीतती है। स्वप्न में भी कृष्ण का विरह उनके हृदय में कसकता रहता है। न उनको जागनें में चैन है या सोते हुए ही। वस्तुतः नींद आती ही नही। वे रात को सोती हैं अथवा बैठी हुई रोती रहती हैं।

हमको सपनेई में सोच।

जा दिन ते विछुरे नन्द - नन्दन ता दिन ते यह पोच।

मनु गुपाल आए मेरे गृह हँसि करि भुजा गही।

कहा करौ बैरनि भई निदिया निमिष न और रही।

कृष्ण जब से मथुरा गये हैं तब से गोपिकाओं के नेत्र बरसने लगे हैं। इनकी आँखें श्रावण - भादों के रुप में बरसती रहती हैं। क्षण भर के लिए भी उनके आँसू बन्द नहीं होते।

निस दिन बरसत नैन हमारे।

सदा रहति पावस रितु हम पै, जब तैं स्याम सिधारे।

दृग अंजन लागत नहिं कब हुँ, उर कपोल भए कारे।

कंचुकि पट सूखत नहिं कबहूँ उर बिच बहत पनारे।

4. शास्त्रीय नियमों का सफल पालन :

'भ्रमरगीत-सार' में कवि की भावुकता के साथ शास्त्रीय नियमों का भी पालन दिखाई देता है। साहित्य शास्त्र के अनुसार विरह की दस दशायें मानी जाती हैं। भ्रमरगीत में विरह की दसों दशाओं से सम्बन्धित वर्णन मिलते हैं।

(i) अभिलाषा :

निरखत अक स्याम सुन्दर के बार बार लावत छाती।

लोचन जल कागद मसि मिलिकै है गई स्याम-स्याम की पाती।।

(ii) चिन्ता :

मधुकर ये नैना पै हारे।

निरखि निरखि मग कमल नयन को प्रेम भगन भए भारे।

(III) स्मरण :

मेरे मन इतनी सूल रही।

वे बतियाँ कही छतियाँ बिखि राखीं, जे नन्दलाल कही।

एक दिवस मेरे गृह आए मैं दधि मथति रही।

देख तिन्हें हौं मौन कियौ, सो हरि गुसा गही।

(iv) उद्वेग : -

तिहारी प्रीति किथौ तरबारि।

दृष्टिधार करि भार साँवरे, घायल सब बज नारि।

(v) प्रलाप :

कैसे पनघट जाई सखीरी, डोवा जमुना तीर।

भरि-भरि जमुना उमडि चलति है, गन नैननि के नीरा।

इन नैननि के नीर सखीरी सेज भई घरनाउँ।

चाहति हौं तेहि ऊपर चदि कै स्याम मिलन को जाउँ।

(vi) उन्माद :

माधव यह बज को व्यौहार

मेरो कयो पवन को भुन भयौ गावत नन्द कुमार

(vii) व्याधि :

ऊधो जू तिहारे चरन, लागौं, बारक या ब्रज करउ भाँवरी।

निसि न नींद आवै, दिन न भोजन भावै मग जोवत भाई दृष्टि झाँवरी।

(viii) जडता :

बालक सग लिए दधि चोरत, कात खवाबत डोलत।

सूर सीस सुनि चैंकति नामहि अब काहे न मुख बोलत।

(ix) मूर्च्छा :

सोचति अति पछताति राधिका मूर्छित धरनि ढही।

सूरदास प्रभु के बिछुरै सैं बिथा न जाति सही।

(X) मरण :

जब हरि गवन कियौ पूरब लौ लिखि जोग पठायो।

यह तन जरि कै भसम है निवरयो बहुरि मसान जगायो।

मेरे मोहन आन मिलपओ कै लै चलु हम साथै।

सूरदास अब भरत बन्यौ है पाप तिहारे माथै।

5. संचारी भाव :

गोपियों में प्रिय के क्षमाभाव आदि विविध संचारी भावो का मिलन भ्रमरगीत सार में हुआ है।

ब्रज बसहु, गोकुलनाथ।

बहुरि तुमहि न पठवी गोर्धनन के साथ।

बरजौ न माखन खात कब हूँ देहुँ देन लुटाय।

गोपियों का प्रेम स्वार्थ रहित होकर वे केवल कृष्ण के दर्शन की लालसा मात्र रखती हैं। उनके प्रेम में भोगेच्छा नहीं, बल्कि केवल प्रिय - दर्शन की इच्छा है।

एक बार जो देहु दरसन प्रीतिपथबसाय।

करौ चौर चढ़ाय आसन नैन अंग अंग लाय||

6. आत्मोत्सर्ग की भावना :

गोपियों की दर्दभरी भोली-भाली बातों में अनुपात, अधीनता, और त्याग के उदगार हैं। उनका कृष्ण के प्रति प्रेम शान्त आराधना के रूप में परिणत होता है। सुख - क्रीडा के बदले भ्रमरगीत में भक्तिमार्ग के शान्तरस का स्वरूप दिखाया गया है।

सच्चे प्रेम में आत्मोत्सर्ग की भावना बढ़ती रहती है। अंत में निराश हो कर प्रेमी प्रिय- दर्शन का आग्रह भी छाड देता है। आत्मोत्सर्ग की यह पराकाष्ठा प्रेमी का प्रेम एक अकंचन कामना के रूप में दिखाई देती है। गोपिकाएँ अपने सुख की कामना नहीं करती। वे केवल प्रिय, कृष्ण के सुख की कामना ही सर्वस्व समझती हैं। गोपियों के प्रेम की चरमावस्था देखिए -

जहँ जहँ रहौ राज करौ तहँ तहँ, लेहु कोटि सिर भार।

यह असीस सम देति सूर सुन न्हात खसै जानि बार।

विरहताप के कारण गोपियों को गाय-बछड़े, भेडिये और बाध दिखाई देते हैं। गोपियाँ चाहती हैं कि जब तक गोकुल में कष्ट दूर न हों, कृष्ण वहाँ न आयें। वे नहीं चाहती हैं कि जब तक गोकुल में कष्ट दूर न हों, कृष्ण वहाँ न आवें । वे नहीं चाहती कि कृष्ण कोई कष्ट भोगें। अतः वे उद्धव से कहती है । "जब तक व्रज निरापद न हो जाय, तब कृष्ण गोकुल से दूर ही रहें!" गोपियों का विचार है -

प्रीति करि काहू सुख न लयो।

7. विरहाग्नि प्रेम की पुष्टि : -

विरहाग्नि में प्रेम की निकाई निखरती है। प्रेम रूपी स्वर्ण की परीक्षा विरह रुपी अग्नि में ही होती है।

विरह अग्नि जरि कुन्दन होई। निरमल तन पावै कोई कोई

विरह से प्रेम की पुष्टि होती है। विरह के लेप द्वारा ही प्रेम पक्का होता है। अतः गोपियाँ उद्धव से कहती हैं -

ऊधो। विरहौ प्रेम करै।

ज्यों बिनु पुट पट गहै न रगहि पुट गहे रसहि परै।

जौ आवो घट दहत अनल तनु तौ पुनि अमिय भरै।

बिरहाग्नि चित्त को सर्वथा निर्मल बाना देती है। धृति की व्यंजना करती हुई गोपियाँ कहती हैं -

अब हमरे जिय बैट्यो यह पद होनी होउ सों सोऊ।

मिटि गयो मान परेखो ऊघो, बिरदय दतो तो होऊ।

गोपियों की इच्छा प्रभु पद प्राप्ति मात्र है। अगर प्रभु पद न भी मिले तब भी उनके हृदय में उनका यश गान ही होता रहता है -

हम तो दुहूँ भाँति फल पायो।

जो व्रजनाथ मिलै तो नी को, नातरु जग जैसे गायो।

8. धर्म का निर्वाह : गोपियों का कृष्ण प्रेम उनके लिए धर्म का निर्वाह है। भक्ति अथवा मुक्ति की कामना के लिए किया जानेवाला कोई अनुष्ठान नहीं, उन्हें कृष्ण प्रिय हैं। इस लिए गोपियाँ कृष्ण से प्रेम करती हैं।

कृष्ण और गोपियों का सम्बन्ध परमात्मा और आत्मा का है। कृष्ण भी गोपियों के लिए व्याकुल होते हैं। वे उद्धव के समक्ष अपने प्रेम की चर्चा करते हुए कहते हैं -

उधौ मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।

हंस सुता की सुन्दर कगरी रु कुजन की छाहीं।

वै सुरभी वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जागही।

श्रृंगार तथा वात्सल्य के क्षेत्र में कवि सूरदास की जैसी अन्तर्दृष्टि कदाचित् ही किसी अन्य कवि को प्राप्त हो। 'भ्रमरगीत-सार' में श्रृंगार रस के प्रायः समस्त सचारी भावों का अत्यन्त स्वाभाविक रूप से प्रस्फुटन दिखाई दैत है।

गोपियाँ उद्धव से वार्तालाप करते समय प्रेम की प्रच्छन्न धारा प्रवाहित होती हैं।

रहु रे मधुकर मधु-मतवारे

कहा करौ निर्गुन लैके हौ ? जीत्रहु कान्ह हमारे।

ऊधो? हम हैं तुम्हारी दासी।

काहे को कटु वचन कहत करत आपनी हाँसी।

9. वक्रतापूर्ण व्यंजना :

'भ्रमरगीत' में कुब्जा के नाम के साथ 'असूया' की बडी ही वक्रतापूर्ण व्यंजना मिलती हैं। गोपियाँ कहती हैं कि यह सन्देश कृष्ण का हो ही नहीं सकता। कुब्जा ने ही आपको सिखा पढ़ा कर हमें दुःख देने को भेजा है -

मधुकर। कान्ह कही नहिं होही।

रचि राखी कूबरी पीठ पै ये बातें चकचौं ही।

आजकल उस कुबडी की चाँदी है और उसी का जीवन सार्थक है।

जीवन मुहचाही को नीको।

दरस परस दिन रात करति है कान्ह पियारे पी कौ।

10. सायुज्य मुक्ति

श्रृंगार में भक्ति विषयक पक्ष भी आ जाता है। वैष्णव सम्प्रदाय में मुक्ति की सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य तथा सायुज्य दशायें बतायी गयी हैं। सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य हैं। 'भ्रमरगीत- सार' में गोपियों द्वारा 'सायुज्य मुक्ति' का प्रतिपादन हुआ है।

सीत उष्ण सुख दुःख नहिं मानै, हानि भये कछु सोचन राँचै।

जाय समाय सूर वा निधि में, बहुरि न उलटि जगत में नौचै॥

प्रेम-भाव की चरमसीमा आश्रय और आलम्बन की एकता है। अतः भगवद्भक्ति की साधना के लिए कवि इली प्रेमतत्व लेकर चलते हैं। रतिभाव के तीनों प्रबल और प्रधान रुप भगवद्विषयक रति, वात्सल्य और दाम्पत्य रति भ्रमर्ग सार में अपूर्वता के साथ निभाये गये हैं।

11. उपसंहार - :

इस प्रकार यह सर्वधा स्पष्ट हो जाता है कि श्रृंगर रस के क्षेत्र में सूरदास की पैठ अनोखी है। उसकी कोई बात उनसे छिपी नहीं रही। सूरदास ने प्रेम क्षेत्र को चारों ओर से लोट-पोट कर देखा भी है और दिखाया भी है। इस क्षेत्र में अन्य कवियों की उक्तियाँ जूठन सी लगती हैं। सूर की रचना गीतकाव्य परम्परा के अन्तर्गत आती है। यह परम्परा उनको जयदेव और विद्‌यापति से प्राप्त हुई। यह परम्परा श्रृंगार रस के अन्तर्गत ही आती है।

गीतकाव्य की सफलता के लिए सगीत, भावनाओं की गहनता, आत्माभिव्यक्ति तथा संक्षिप्तता आवश्यक है! 'भ्रमरगीत सार' की रचना इस कसौटी पर खरी उतरी है। काव्य का प्रत्येक पद चुन कर सजाया गया गुलदस्ता है। अमगीतसार के पद सगीतज्ञों के कण्ठहार हैं। आज भी सूर के पद के गायन के बिना कोई भी संगीत सम्मेलन पूर्ण नहीं समझा जाता है।

तुलसी संचयन (रामचरित मानस-बालकाण्ड)

प्र.1. रामभक्ति शाखा के प्रवर्तक तुलसीदास के बारे में चर्चा कीजिए।

(अथवा)

हिन्दी साहित्य के महान कवि तुलसी के बारे में आप क्या जानते है।

(अथवा)

गोखामी तुलसीदास की भक्ति भावना पर चर्चा कीजिए।

(अथवा)

तुलसी की काव्य पद्धति पर चर्चा कीजिए।

रुपरेखा -

1. प्रस्तावना

2. जीवनी

3.रचनाएँ

4. तुलसी की रामभक्ति

5. अवतार के हेतु

6. राम के विविध रूप

7. शील, शक्ति तथा सौन्दर्य

8. आत्म - धर्म

9. राम नाम की महत्ता

10. उपसंहार

1. प्रस्तावना :

हिन्दी साहित्याकाश में महाकवि तुलसीदास सतत प्रसन्न चन्द्रमा हैं। किसी ने सही ही कहा - 'सूर सूर तुलसी ससि' गोस्वामी तुलस दास के बारे में बताना सारे आकाश की चित्रकारी करने के समान है।' अथवा सारे समुद्र के पानी को उलीचने के समान है। तुलसीदास को नाभादास ने कलियुग वाल्मीकि का अवतार कहा है। वेदों में पुराणों में, शास्त्रों में, तथा काव्यों में बताये गये, रामतत्त्व को उन्होंने अपने महान काव्य रामचरितमानस में ढालकर जन-मानस में रामभक्ति का संचार

कराया। भारतीय संस्कृति, चरित्र चित्रण, रसपरिपाक आदि में रामचरितमानस का समतुल्य करनेवाला काव्य हिन्दी साहित्य जगत में कोई अन्य नहीं। वाल्मीकि रामयण में बताये गये राम के धर्म स्वरूप (वेग्रहवान धर्मः) को लेकर उन्होंने मर्यादा पुरोषत्तम के रूप में प्रस्तुत किया।

2. जीवनी -

अन्तः तथा बाह्य साक्ष्यों के आधार पर तुलसीदास सरयू पारीण बाह्मण माने जाते हैं। माता का नाम हुलसी और पिता का नाम आत्मारामदुबे था। मूला नक्षत्र में जन्म लेने के कारण और जन्मते ही माना का स्वर्गवास होने के कारण पिता ने तुलसी को त्याग दिया। तुलसीदास जन्म लेते ही राम नाम का स्मपण करने लगे तो उनका नाम रामबोला रखा गया। पिता से परित्यक्त रामबोला (तुलसी) का पालन पोषण मुनिया नामक दासी से हुआ। पाँच वर्ष के बाद मुनिया का स्वर्गवास हो गया, तो तुलसी दास घर- घर भीख माँगते फिरे। तुलसी ने सूकर क्षेत्र में बाबा नरहरिदास से राम की कथा सुनी। शेष सनातन के पास रहकर काशी में उन्होंने वेद, उपनिषत्, शास्त्र, विविध पुराण आदि का अध्ययन किया।

कहा जाता है तुलसी अपनी पत्नी रत्नावली पर अधिक मोहित थे। इस पर एक बार उनको रत्नावली से मीठी भर्त्सना (मजाक से तिरस्कार करना) खानी पड़ी।

लाज न लागत आप को दौरे आयउ नाथ।

अस्तिचर्म मय देह मम ता में जैसी प्रीति॥

पत्नी की भर्त्सना तुलसीदास के लिए उपदेश बन गई। वे बदरीनाथ, काशी, द्वारका, पुरी, चित्रकूट, अयोध्या आदि तीर्थ स्थानों में घूमते रहे। भगवान राम उनके हृदय का केन्द्र बिन्दु बन गये।

3. रचनाएँ : :

तुलसीदास ने राम को केन्द्र बिन्दु बनाकर अनेक काव्यों की रचना की। उन में आज बारह (12) मात्र उपलब्ध हैं -

1. रामचरितमानस, 2. विनय पत्रिका, 3. कवितावली, 4. दोहावली, 5. गीतावली, 6. बरवै रामायण, 7. जानकी मंगल, 8. रामाज्ञा प्रश्न, 9. वैराग्य संदीपनी, 10. रामलला नहछू और समन्वयवादी होने के कारण तुलसीदास ने कृष्णभक्ति से संबन्धित कृष्णगीतावली और शैव भक्ति से संबन्धत पार्वती मंगल काव्य की रचना की है।

4. तुलसी की राम भक्ति

गोस्वामी तुलसीदास क्रमशः निर्गुण, सगुण अवतारबाद को लेकर चलते हैं। उनकी भक्ति श्रुतिसम्मत है। (वेद सम्मत) वे राम परब्रह्मत्व को शिव, ब्रह्मा और विष्णु भी महान मानते हैं जो रूप, नाम और रहित है।

"एक अनीह अरूप अनामा सच्चिदानन्द परधामा।।

व्यापक विश्वरूप भगवाना। तेहि धरि देहचरित कृत नाना॥

राम निर्गुण होते हुए भी सगुण हैं। व्यापक निर्गुण ब्रहम सगुण ब्रहम के रूप अवतरित हुए थे जिन्हें वेद भी नेति नेति कहते हैं। तुलसी कहते हैं –

सगुन अगुनहि नहि भेदा उभय हरड़ भव संभव खेदा। निर्गुण परब्रहम भक्तों के प्रेम बस सगुण बन जाता है।

5. राम अवतार हेतु -

राम अवतार हेतु (कारण) अनेक बताये गये हैं। प्रत्येक कल्प में दीन तथा भक्तों की रक्षा के हेतु राम अवतरित होने रहते हैं।

नाना भाँति राम अवतारा। हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता।

जब जब धर्म की हानि होती है,

तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा।

इसका आधार भगवतगीता का श्लोक.....।

“यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानि.........."|

तुलसी के राम दशरथनन्दन अयोध्या से हैं। महाकवि तुलसीदास बार-बार वक्ता-श्रोता के द्‌वारा यह विषय याद दिलाते चलते हैं।

“एक राम अवधेस कुमारा तिन्ह कर चरित विदित संसारा॥”

भक्त, भूमि, ब्रह्मण और देवताओं के हित के लिए राम अवतरित हुए हैं। शिवजी पार्वती को राम की महिमा बताते हैं।

“गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुरहित दनुज विमोहन लीला॥”............................

“जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धाम्॥”

6. राम के विविध रूप : -

राम स्वयम् ‘विष्णु' के रूप में प्रसिद्ध हैं। कभी 'चतुर्भुज' प्रकट करते हैं। त्रिमूर्तियों को वे नचानेवाले हैं। भक्त तुलसी सारे विश्व को राम में देखते हैं।"

“यन्मायावशवर्ति विश्वमखिंल ब्रह्मादिदेवासुरा।"

तुलसी सारे जगत को सीताराममय मानते हैं।

सीय राम मय सब जग जानि। करउ प्रनाम जोरि जुग पानि॥

तुलसी के राम परम कृपालु हैं, प्रनत अनुरागी हैं, और विधि हरि शंभु के नचावनहारे हैं। वे शांत, सनातन, अप्रमेय, निष्काम, मोक्षरूप, शाँति प्रदाता हैं। वेदान्त वेदय, माया मनुष्य, पापहारि, करुणाकर, रघुकुल श्रेष्ठ और जगदीश्वर हैं। तुलसीदास रामचरितमानस के प्रधान पात्रों के द्वारा राम के परब्रह्मत्व को प्रकट करते हैं। देवगण, महर्षिगण, क्षत्रियवर्ग, भकतगण, वानर तथा राक्षसवर्ग भी राम के परब्रह्मत्व को प्रकट करते हैं।

खरदूष्ण मम सम बलवन्ता। को नहिं मारहि बिनु भगवन्ता॥ (रावण)

तुलसी दास स्वयम राम को संबोधित कर कहते हैं- जाउ कहाँ तजि चरण तुम्हारे।

7. शील, शक्ति तथा सौन्दर्य -

रामचरितमानस अधर्म पर धर्म की, असत्य पर सत्य की, नास्तिकता पर आस्तिकता की, तमस (अंधकार) पर सत्त्व की और आन्ततोगत्वा रावणत्व पर रामत्व की विजय स्थापित करता है। इसका कारण तुलसी की रामभक्ति है। तुलसी के रामत्य पर वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, भागवत आदि ग्रन्थों का प्रभाव है। इन सब के समन्वय के रूप में तुलसी के राम शील, शक्ति तथा सौन्दर्य से समन्वित होकर हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं।

8. आत्म - धर्म :

जीवन दो प्रकार का होता है।

1. शारीरिक धर्म और

2. आत्म धर्म

रामायण आत्म धर्म प्रधान काव्य है। राम की कथा ऋग्वेद संहिता में, अथर्व वेद में, शतपथ ब्राहमण में और उपनिषदों में वर्णित है। इसलिए तुलसी रामचरितमानस को श्रुति सम्मत कहते हैं। रामायण मोक्ष विद्या और दीर्घ शरणागति काव्य है। राम को जन्म देनेवाले कौसल्या तथा दशरथ और महान् ज्ञानी राजा जनक भी राम के चरणों की वंदना करते हैं। राम भक्ति के सामने सारा जगत और बन्धुजन नगण्य हैं। उदाहरण के लिए प्रहलाद ने पिता को, विभीषण ने भाई को, भरत ने माँ को, बलि ने गुरु को और गोपियों ने पतियों को त्याग दिया था। वे सब राम की कृपा के कारण महान श्रेय के भागी रहे।

"तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी।

तज्यो कन्त ब्रज बनितनि भये मुद मंगल कारी॥"

जिस प्रकार राम ब्रहम है उसी प्रकार सीता प्रकृति तत्व है। तुलसी सीता को आदिशक्ति, छविनिधि (सौन्दर्य निधि) और जगमूला के रूप में बताते हैं। उद्भव स्थिति संहारकारिणी तथा क्लेशहारिणी के रूप में सीता की स्तुति करते है। तुलसी लिए सारा जग सीताराममय है। लक्ष्मण को तुलसी जगत के आधार शेष जी के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

"सैष सहस्र सीस जग कारन।"

आचर्य की बात है कि - खलनायक रावण भी सीता और राम के प्रति भक्ति प्रकट करता है। वह सीता चरणों की वंदना करता है।

"मन चरन बंदि सुख माना।"

रामायण सारे अन्य पात्र जीव कोटि के अन्तर्गत आते हैं। राम की भक्ति रखने से कोई जीव माया चंगुल में कि मायाधीस राम भक्तों की रक्षा करते हैं।

9. राम नाम की महत्ता

रामायण बेद संज्ञा है। रामायण कथा जितनी व्यंपक है, राम नाम की महिमा उतनी महान है। श्री मद्भागवत नवविध भक्ति विवरण दिया गया है।

"श्रवणं कीर्थनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं।

अर्चनं वदनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनं॥"

सूरदास की भक्ति सख्य है और तुलसी की दास्यभक्ति है। जैसे गीता में बताया गया है, 'यज्ञानां जपयज्ञोस्मि', के • आधार पर वे राम नाम का स्मरण करते हैं। शास्त्र का कथन है - "कलौ स्मरणान मुक्तिः।" बीज मंत्रों की दृष्टि से कर्म का नाश करने वाले अग्नि बीज 'र', ज्ञान को जगाने वाले आदित्यबीज (विष्णु) 'आ' और भक्ति का शीतल और शान्ति चंन्द्र बीज 'म' से राम मंत्र बना हुआ है। 'र' वैराग्य का 'आ' ज्ञान का और 'म' भक्ति का प्रतीक है। ये ही बीजाक्षर क्रमशः शिव, विष्णु तथा ब्रह्मा के प्रतीक हैं । निर्गुण तथा सगुण रूप राम मंत्र वेदों के प्राण हैं। तुलसीदास ने राम मंत्र की महत्ता को विविध रूपों में बताया। राम नाम रूपी मणिदीपक को मुख रूपी द्वार पर रखने से जीव को आंतरिक तथा बाह्य प्रकाश प्राप्त होता है। 'र' कहने मात्र से पहाड जैसा पाप बाहर जाता है। 'म' कार के उच्चारण से फिर वह पाप जीव के अन्दर नहीं आ सकता।

"राम नाम मणि दीप धरु जीह देहरी द्वार।

तुलसी भीतर बाहिरौ जो चाहसि उजियार।।"..............

"तुलसी 'रा' कहते ही बाहर जात पाप पहार।

फिरि भीतर आवत नहिं देत 'म' कार कवाट।"

इसीलिए तुलसी सदा राम नाम का स्मरण करने के लिए कहते हैं।

'राम कहत चलु। राम कहत चलु॥ राम कहत चलु भाई रे॥

10. उपसंहार :

रामकथा 'भारतीय' संस्कृति का उज्ज्वलतम प्रतीक है। शुक्ल जी के अनुसार भक्ति धर्म की रसात्मक अनुभूति है। तुलसी की रामभक्ति रामचरितमानस में प्रतिबिंबित होती है। अनेक विद्वानों के अनुसार रामचरितमानस भक्ति या धार्मिक काव्य है। महेश जी ने प्रथमतः इस की रचना की और पार्वती को रामकथा बताकर उन्होंने उसे अपने मानस में रखा। इसी कारण गोस्वामी तुलसीदास ने इस काव्य का नामकरण रामचरितमानस रखा। शील, शक्ति तथा सौन्दर्यमय राम चरित्र की रचना के पीछे दो कारण बताते हैं ।

1. अपनी वाणी को पवित्र करना और

2. आत्म सुख की प्रप्ति के लिए

"निजगिरा पावनि करन राम जसु तुलसी कहयो।"

'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथाभाषानिबंध मतिमंजुलमातनोति।'

रायणत्व पर रामत्व का स्थापित करना राम काव्य की रचना का मूल उद्देश्य है। इस में धार्मिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक तथा नैतिक विषयों का समन्वय हुआ है जिस से समाज का पथ प्रदर्शन हुआ। तुलसीदास संत समाज को तीर्थराज बताते हैं और राम भक्ति को सुरसरिधारा बताते हैं, जिसे सुनने से (स्नान करने से) जीवन की सफलता मिलिती है। तुलसीदास भक्ति के साथ - साथ मानस में ज्ञान तथा कर्म के विषय भी चर्चा करते हैं। तुलसीदास की भक्ति के बारे में और उनकी कविता के

बारे में जो भी, जितना भी बताये वह कम ही है। तुलसीदास कविता करके शोभित नहीं हुए लेकिन कविता उनकी कला पाकर शोभित है।

"कविता करके तुलसी न लसे। लसी कविता पा तुलसी की कला।"

प्रसिद्ध विद्वान मधुसूदन करस्वती ने तुलसी की कविता से प्रसन्न होकर कहा था काशी रूपी आनन्द वन में तुलसीदास चलता फिरता तुलसी का पौधा हैं। उनकी कविता रूपी मंजरी बड़ी सुन्दर है, जिस पर राम रूपी भ्रमर मण्डराता रहता है।

'आनन्द कानने हस्मि जंगम तुलसी तरुः।

कविता मञ्जरी भाति राम भ्रमर भूषिता।"

ऐसे रस सिद्ध कवि जन्म और मारण के भय से रहित रह कर शाश्वत यश की प्राति कर लेते हैं।

"जयन्ति ते सुकृतिनो ससिद्धाः कवीश्वराः।

नास्ति येषां यशः काये जरा मरणजं भयम्॥”

2. महाकवि तुलसीदास की समन्वय साधना का विश्लेषण कीजिए।

(अथवा)

तुलसीदास लोकनायक कहलाते हैं - किसलिए?

(अथवा)

गोस्वामी तुलसीदास के लोकनायकत्व पर विचार कीजिए।

(अथवा)

'लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके', इस उक्ति की पृष्टि पर विचार कीजिए।

रूपरेखा ::

1. प्रस्तावना

2. तुलसी का युग

3. तुलसी की समन्वय वचारधारा

4. उपसंहार

1. प्रस्तावना :

हिन्दी साहित्याकाश में महाकवि तुलसीदास सतत प्रसन्न चन्द्रमा है। किसी ने सही ही कहा सूर 'सूर तुलसी ससि' गोरखामी तुलसी दास के बारे में बताना सारे आकाश की चित्रकारी करने के समान है अथवा सारे समुद्र के पानी को उलींचने के समान है। तुलसीदास को नाभादास ने कलियुग वाल्मीकि का अवतार कहा है। वेदों में पुराणों में, शास्त्रों में तथा काव्यों में बताये गये, रामतत्त्व को उन्होंने अपने महान

काव्य रामचरित मानस में ढालकर जन मानस में रामभक्ति का संचार कराया। भारतीय संस्कृति, चरित्र चित्रण, रसपरिपाक आदि में रामचरितमानस का संमतुल्य करनेवाला काव्य हिन्दी साहित्य जगत में कोई अन्य नहीं। बाल्मीकि रामयण में बताये गये राम के धर्म स्वरूप (रामो विग्रहवान धर्मः) को लेकर उन्होंने मर्यादा पुरोषत्तम के रूप में प्रस्तुत किया।

2. तुलसी का युग -

तुलसीदास का जन्म अनेक विश्रृंखलताओं के युग में हुआ - देश के धार्मिक भेद में नाना प्रकार के संप्रदाय प्रचलित थे। एक ओर अलख जगाने वाले नाथ-पंथि योगियों का प्रशिक्षित वर्ग पर प्रभाव पड रहा था, तो दूसरी ओर जात-पांत के विरोधी कबीरदास अलखोपासना का संदेश सुना रहे थे। शाक्त संप्रदाय में वामपक्ष तथा दक्षिण पक्ष प्रबल हो रहे थे। वामपक्ष में मद्‌य, माँस, मत्स्य, मुद्रा तथा मैथुन पंचमकारों की वासनामय उपासना होने लगी! शैदों और वैष्णवों के बीच भेद उत्पन्न हुए। फिर वैष्णवों में भी राम भक्ति शाखा तथा कृष्ण भक्ति शाखा के बीच मतभेद होने लगे। अदद्‌वैतवाद, विशिष्टाद्‌वैतवाद और दद्‌वैतवाद में परस्पर संघर्ष होने लगा। राजनीतिक दृष्टि से विदेगीजाति ने भारतीय जनता को अपने शासन के अधीन कर लिया। वह सच्चा कलियुग (पाप का युग) था।

“गोड गँवार नृपाल महि, यमन महा महिपाल।

साम न दान न भेद, कलि केवल दण्ड कराल॥"

तत्कालीन समाज आर्थिक रूप से भी विपिन्न था। दंपति सुख भोगों में मग्न होकर पारिवारिक कर्तव्यों की उपेक्षा करते थे। नव यौवना पत्नी के सौन्दर्य के लोभ में अनेक युवक अपने माता- पिता की उपेक्षा कर रहे थे। युवक अति विलासिता में भंग होने के कारण सामाजिक जीवन में शिथिलता आने लगी। वेद और धर्म दूर

हो चुके थे। धार्मिक, सांस्कृतिक, नैतिक तथा आर्थिक दृष्टि से तुलसी के समय समाज ह्रासोन्मुख था।

तुलसीदास ने तत्कालीन समाज को परखा। लोकमंगल की भावना उनके ह्रदय में जागरित हुई। समाज में धार्मिक सांस्कृतिक, तथा आर्थिक करने की हुई, गोस्वामी तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस द्वारा समाज को रक्षक मर्यादा पुरुषोत्तम राम के दर्शन कराये। उनकी रामायण श्रुति सम्मत है। उनके राम शील, शक्ति तथा सौन्दर्य के प्रतिरूप है।

3. तुलसीदास की समान्वय विचारधारा -

(क) साहित्यिक समन्वय :- तुलसीदास में साहित्यिक समान्वय भावना गोचर होती है। आप की कृतियाँ तीस से अधिक बताई जाती हैं, लेकिन उन में बारह ही आज प्राप्त हैं।

1. रामचरिमानस उनका सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है, जो प्रबन्ध काव्य है। इस में संपूर्ण रामकथा का विवरण है।

2. विनयपत्रिका भक्ति समन्वित पदों की रचना है। इस काव्य में तुलसी की भक्ति विशेषता का चरमोत्कर्ष प्रकट होता है।

3. कवितावली - कवितावली में कवित्त, सवैया, छप्पय आदि छन्दों का समाहार है।

4. गीतावली - रामकथा की गीतरचना है।

5. दोहावली - इस में नीति, भक्ति, नाम महिमा आदि का उल्लेख तथा बिवरण हुआ है।

6.कृष्ण गीतावली - कृष्ण गीतावली में कृष्ण की महमा की कथा है।

7. पार्वती मंगल - यह शैव संप्रादाय की पुष्टि में लिखा हुआ काव्य है। इस प्रकार तुलसी ने तत्कालीन सारी काव्य शैलियों में कृतियों की रचना की।

(ख) धार्मिक समन्वय :- महाकवि तुलसीदास ने धार्मिक क्षेत्र में समन्वय लाने का प्रयत्न किया। शिव, राम की स्तुति करते हैं और राम शिव का स्मरण करते हैं। राम स्वयं कहते हैं -

शिब द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहु मोहि न पावा।

संकर विमुख भगति चहु मोरी। सो नर की मूढ़ मति थोरी॥

रामचरित को शिव अपने हृदय में रख लेते हैं। इसलिए इस काव्य का नाम रामचरितमानस रखा गया है। निर्गुण और सगुण में समन्वय लाते हुए उन्होंने कहा है -

अगुनहिं सगुनहि नहिं कछु भेदा।

भक्ति और ज्ञान में समन्वय लाते हुए तुलसी ने बताया –

“भगतिहि म्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहि भव संभव खेदा॥"

(ग) राजनीतिक समन्वय :- गोस्वामी तुलसीदास एक ओर तत्कालीन विश्रृंखल शासन का तिरस्कार करते हुए रामराज्य की स्थापना भारत से चाहते हैं।

"दैहिक, दैविक, भौतिक, तापा। रामराज्य काहु हि नहि व्यापा॥"

(घ) सामाजिक समन्वय :- रामचरितमानस में वर्णाश्रम धर्म का विवरण हुआ है। जिस में राजा - प्रजा का संबन्ध, माता पिता का संबन्ध, पिता पुत्र का संबन्ध, भाई-भाई का संबन्ध, सास बहू का संबन्ध - स्वामी सेवक का सबन्ध आदि का चित्रण मर्यादा पूर्वक हुआ है। इस से तुलसीदास सामाजिक क्षेत्र में समन्वय भावना की

इच्छा रखते हैं। सीता और राम भगवान के स्वरूप होते हुए भी साधारण प्रजा से और बन में विचरने वाले कोल किरातों से हृदयाविष्कार के साथ व्यवहार करते हैं। इसीलिए राम शील, शक्ति तथा सौन्दर्य के समन्वय रूप माने जाते हैं। सीता और राम के अवतार स्वरूप मे सारे विश्व में प्रतिबिंबित होते हुए तुलसीने बताया।

सीय राम मय सब जग जानि। करउ प्रणाम जोरि जुग पानि॥

रामराज्य में सब लोग दान देनेवाले ही थे। लेनेवाला कोई भी नहीं था। यहाँ तुलसीदास आर्थिक तथा नैतिक समन्व्य करते हैं।

(ङ) दार्शनिक समन्वय :- तुलसीदास की विचार धारा में कोई नई बात नहीं थी। जो कुछ भी उन्होंने कहा है श्रृति सम्मत कहा है। उपयुक्त विषय के संग्रह में और अनुपयुक्त विषय को त्यागने में वे अत्यन्त सफल थे। फिर वे अपने सिद्धान्तों को रामचरितमानस के द्वारा जन मानस में व्याप्त करते गये। उन सिद्धान्तों का सार ही तुलसी मत है। उनका मानस नाना पुराण निगमागम सम्मत होने के कारण उनका रामकाव्य महान समन्वय काव्य बन गया है। गोस्वामी जी की भक्ति श्रुति सम्मत है।

तुलसी ने तत्कालीन सारे दार्शनिक विचारों को परखा और सब का समन्वय किया। उपनिषदों का ब्रहमवाद, गीता का अनासक्ति योग, वौद्धों और जैनों का अहिंसा वाद, वैष्णवों और शैवों का अनुराग - विराग, शक्तों का जप, शंकर का अद्वैतवाद, रामानुज की भक्ति भावना, निंबार्क का द्वैताद्वैत, मध्व की रामोपासना, बल्लभ का बालरूप आराध्य, चैतन्य का प्रेम, कबीर आदि सतों का नाम जप आदि - आदि तुलसी के रामचरितमानस में दर्शित होते हैं।

उपसंहार

धर्म ग्लानि होने पर, समय समय पर लोकनायक अवतरित होते हैं और लोक रक्षा अपने-अपने बिधान से करते हैं। -

उदा - यदा... यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम।

धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥ .

जिस प्रकार महाभारत काल में योगिराज कृष्ण ने ज्ञान, कर्म और भक्ति का समन्वय करके समाज का पथप्रदर्शन किया, उसी प्रकार महाकवि तुलसीदास ने भारतीय समाज में दर्शनिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक, पारिवारिक तथा साहित्यिक समन्वय करके समाज को प्रशारत किया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है. "भारत वर्ष का - लोक नायक वही है जो समन्वय कर सके। तुलसी ही समन्वयकारी थे। रामचरितमानस आद्यन्त समन्वय काव्य है।"

तुलसीदास ने तत्कालीन समाज को परखा। उन में लोक मंगल की भावना जागरित हुई। श्रुति सम्मत आदर्श राम कथा रची। उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम राम का चरित्र संसार को दिया। जड चेतन गुण दोषमय संसार को पार करने के लिए तुलसी ने समाज को रामरस का पान कराया। शील, शक्ति तथा सौन्दर्य का समन्वय ही रामचरितमानस है। तुलसी का मानस आत्म सुख प्रदान करनेवाला महान काव्य है। तुलसी की समन्वय भावना अतुलित है। इसीलिए वे लोक नायक कहलाते हैं।

“कविता करके तुलसी न लसे। लसी कविता पा तुलसी की कला॥“ – हरिऔध

बिहारी

प्र.1. बिहारी की काव्य कला पर चर्चा कीजिए।

(अथवा)

रीति कालीन मूर्धन्य कवि बिहारी के काव्य सौष्ठव का विवेचन कीजिए।

(अथवा)

गागर में सागर और बिन्दु में सिन्धु भरनेवाले रीति कालीन विशिष्ट कवि बिहारी लाल की काव्य कला पर झाँकी डालिए।

रूपरेखा :

1. प्रस्तावना

2. युग की परिस्थितियाँ

3. श्रृंगारी भावना

क. संयोग पक्ष

ख. वियोग पक्ष

4. भक्ति भावना

5. प्रकृति चित्रण

6. सूक्ति तथा नीति

7. विद्‌वत्ता

8. अलंकारयोजना

9. भाषा – शैली

10. उपसंहार

1. प्रस्तावना

शृंगारी काव्य रचना परम्परा में बिन्दु में सिन्धु और गागर में सागर भरनेवाले रीतिकालीन गर्भन्य कवि बिहारीलाल का यपूर्ण स्थान है। बिहारी सतसई भावपक्ष तथा कलापक्ष दोनों में अत्यधिक लोक रंजक बन गई है। कहा जाता है कि वे चार्य केशवदास के पुत्र हैं। उनकी पत्नी भी एक कुशल कवयत्री थी। वे राजाओं के और सामन्तों के दरबारों में कुछ श्रृंगार क तथा अन्य दोहे सुनाकर पुरस्कार तथा दक्षिणा प्राप्त करते थे। एक बार जयपुर के राजा जयसिंह चौहान रानी से विवाह के उसी के साथ भोग-बिलास में डूबे हुये थे। बिहारी ने.....

"नहिं परग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।

अनी कली ही सौ बाँध्यो, आगे कौन हवाल॥"

राजा जयसिंह इस दोने का प्रतीकार्थ समझ गये। उन्होंने बिहारी का अपने दरबार में कवि के रूप में सम्मान किया। जीवन - बिहारी वहीं रहें और अपने रसिकतापूर्ण वैविध्य दोहों से दरबार को रंजित करते रहे।

2. युग की परिस्थितियाँ :

बिहारी का युग बिलकुल बिलासपूर्ण था। मुसलमानी शासन का बोलबाला था। मुसलमानों की संस्कृति के सामने हिन्दू संस्कृति कुछ झुकी हुई थी। बादशाह, राजा, अमीर आदि विलासिता में डूबे हुए थे। धार्मिक संप्रदाय भी चलते थे। लेकिन सारा वातावरण श्रृंगारी रस व्यंजना में अधिक डूबा हुआ था। संस्कृत साहित्य को आधार बनाकर व्यावहारिक ज्ञान से काव्य का निर्माण होता था।

बिहारी के व्यापक परिवेश में नारी भावना केन्द्रित थी। नारी की चमक, दमक, हाँसी, दीरघनयन, भौहें, नख - शिख वर्णन, वयः सान्धि, नारी के विविध अनुभाव आदि आदि का बिहारी ने रसमय वर्णन किया।

3. श्रृंगारी भावना :

बिहारी लाल हिन्दी साहित्य के श्रेष्टतम श्रृंगारी कवि हैं। लौकिक भाषा में प्रेम को श्रृंगार कहते हैं। लेकिन वास्तव में श्रृंगार प्रेम की व्यापक भावना है।

'श्रृंग' का अर्थ है - कमोद्रेक

'आर' का अर्थ है - लानेवाला

नर- नारी के परस्पर झुकाब को 'रति' कहते हैं। इस में बाह्य सौन्दर्य की मात्रा अधिक होती है। विभाव और भाव, रति का मानसिक पक्ष है और अनुभाव शारीरक पक्ष है।

बिहारी ने श्रृंगार के सारे पक्षों का विवरण दिया है।

क संयोग पक्ष : बिहारी नाइका के पूर्वराग की झलक बताते है।

"डर न टरै नींद न परै हरै न काल बिपाकु!'

इसी प्रकार नायक और नाइका के बीच होनेवाले अनुभाव पूर्ण चमत्कार को बिहारी इस प्रकार प्रस्तुत करते है -

"चमक, तमक, हाँसी, ससक, मसक, झपट, लपटानि।

ए जिहि रति, सो रति मुकति और मुकति अति हानि॥"

नाइका के उभरे यैवन का बिहारी चित्रांकन करते हैं।

दुरत न कुचबिच कंचुकी चुपरि

नाइका की सौंदर्य विशेषता बिहारी अतिशियोक्ति के साथ प्रस्तुत करते हैं।

लिखन बैठि जाकी सबी गहि- गहि गरब गरूर।

भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर ॥

विभाव पक्ष में कभी आलम्न की चेष्टाएँ उद्दीपन का काम करती है। नाइका नायक पर गुलाल की मूठ चलाती है।

पीठि दिये ही, नैक मुंरि, कर घूँघट - पटु टारि ।

भरि गुलाल की मूठि सौं, गई मूठि सी मारि ॥

ख. वियोग पक्ष :- वास्तव में श्रृंगार को रसराज कहते हैं। संयोग में तो प्रेम एकन्त रूप में और सीमित रहता है। वियोग में आत्मा का प्रसार अधिक होता है। नदी, पहाड, लता, वृक्ष आदि वियोग में उद्दीपन का काम करते हैं। प्रकृति में प्रियतम की झलक दिखाई देती है। हृदय की वीणा जितनी विप्रलम्भ श्रृंगार में झंकृत होती है, उतनी संयोग श्रृंगार में नहीं। विप्रलम्भ में हृदय की मर्म वेदना का झंकार होता है। कालिदास का मेघदूत वियोग श्रृंगार का सुन्दर काव्य है। बिहारी ने वियोग पक्ष का भी सुन्दर चित्रण किया है। अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणगान, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि और मरण- वियोग की सारी दशाओं पर बिहारी ने अपनी तूलिका फेरी।

वास्तव में वियोग विरह में मनुष्य सूखकर काँटा हो जाता है। विरहाज्ञी के कारण नाइका के ऊपर गिरनेवाला गुलाब जल भी भाप बन जाता है। नाईका का शरीर क्षण-क्षण क्षीण हो जाता है।

"करी बिरह ऐसी तऊ गैल न छाड़तु नीचु।

दीनै हूँ चसमा चखनु, चाहे लहै न मीचु॥"

वियोग श्रृगार पूर्वराग, मान, प्रवास और करुणा - सारे रूपों पर बिहारी ने बल दिया है। अधिक विषय गमन - प्रवास में रहने वाले प्रियतम का पत्र मिलने पर नाइका प्रेमाभिव्यंजना व्यक्त करती है - वह पत्र को बार बार चूम लेती है और सिर पर उसे रख लेती है। फिर ह्रदय पर लगा लेती है। -

"कर लै, चूमि, चढ़ाइ सिर, उर लगाइ, भुज भेंटि।

लहि पाती पिय की लखति, बाँचति धरति समेटि॥"

प्रिय को वह सन्देश भेजना चाहती है। लोकिन कागज पर लिखा न बनता।

"कागद पर लिखत न बनत, कहत संदेसु लजात।

कहि है सबु तेरों हियौं, मेरे हिय की बात॥"

संयोग का वर्णन अधिक स्वभाविक होता है और वियोग में कहीं नाइका का शरीर जलता है। गुलाब का जल एक बूँद भी उसके शरीर पर नहीं गिरता। साँस लेते विरहिणी नाइका दुर्बलता के कारण आगे-पीछे होती रहती है।

"औंधाई सीसी सुलखि बिरह - बरनि बिललात।

बिच हीं सूखि गुलाबु गौ, छींटौ छुई न गात ॥"

"इति आवति चलि जाति उत चली छसातक हाथ।

चढ़ी हिंडौरै सैं रहै, लगी उसासनु साथ ॥"

4. भक्ति भावना :

विहारी लाल वस्तुत: श्रृंगारी कवि है। साथ ही उन में माधुर्य, सख्य, हास्य आदि सभी प्रकार की भक्ति के तत्त्वं समन्वित हुये हैं। वे वाह्याडम्बरों का निराकरण करके मन की पवित्रता की आवश्यकता बताते हैं।

"जपमाला छापै तिलक सरै न एकौ कामु ।

मन - काँचै नाचै वृथा साँचै राँचै रामु॥"

सांसारिक विषय वासनों में न गिरकर भगवान का दिया हुआ स्वीकार करने की वे सलाह देते हैं।

दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साईहिं न भूलि।

दई दई क्यों करतु है, दई दई सु कबूलि।।.

5. प्रकृति चित्रण :

प्रकृति सदा मानव की सहचर रही है। प्रकृति के बिना कोई जीव-जन्तु पनप नहीं सकता। अत. सौदयांनुभूति तथा ललिंत अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति अत्यन्त आवश्यक है। अतः हम यह कह सकते हैं कि प्रकृति चित्रण के बिना कविता ही नहीं। बिहारी प्रकृति चित्रण में मानवीयता की ओर अधिक झुकते हैं। उद्दीपन और अलंकारों की अद्भुत समन्वयता के लिए प्रकृति को ले लेते हैं। वे कहीं-कहीं प्रकृति के मानवीकरण की सूक्ष्मता तक जाते हैं।

बैठि रही अति सघन वन, पैठि सदन तन माँह।

देखि दुपहरी जैठ की, छाँहीं चाहति छाँह।।

संयोग और वियोग पक्ष दोनों में प्रकृति चित्रण का महत्वपूर्ण स्थान होता है जिसे बिहारी लाल ने सफलता के साथ निभाया है।

6. सूक्ति तथा नीति

बिहारी लाल दरबारी कवि होने पर सूक्ति तथा नीति परक दोहों की रचना भी उन्होंने की। समाज द्वन्द्वात्मक होता है। इसलिए समाज में जो सत तथा असत होते हैं। उनका सूक्ष्म अनुशीलन करके बिहारी दरबार के सामने प्रस्तुत करते हैं।

उदा -

यमक तथा काव्य लिंग अलंकारों से समन्वित यह दोहा देखिए -

"कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।

यह खाये बौराय जग, ये पाये बौराय॥"

इसी प्रकार संसार में कोई भी सुन्दर नहीं और ओई भी असुन्दर नहीं। समय के अनुसार और देखने वालों के अनुसार कोई चीज सुन्दर दिखाई देती है और कभी कोई वस्तु असुन्दर दिखाई देती है। मानवों में भी सुन्दरता के बारे में यही विषय बताया है गया है।

"समै समै सुन्दर सबै रूप कुरूप न कोई।

मन की रुचि जेती जितै तित तेती रुचि होइ!!

अनेक स्थानों पर बिहारी नर की उन्नति का रहस्य नल के पानी की तुलना से करते है।

7. विद्वत्ता :

कवि अक्षर तपस्वी तथा सुवर्णयोगी होता है। इसलिए विविध विषयों का ज्ञान आवश्यक है। गणित, ज्योतिष, इतिहास, नीति, आयुर्वेद, विज्ञान आदि विषयों का ज्ञान बिहारी रखते हैं। इनका ज्ञान भण्डार बहु व्यापक है। ज्योतिष तथा विज्ञान संम्बन्धी यह दोहा देखिए –

“पत्रा ही तिथि पाइयै वा घर कै चहुँ पास।

नित प्रति पून्यौई रहै, आनन- औप- उजास॥"

8. अलंकारयोजना :

बिहारी की 'सतसई' बिन्दु में सिन्धु भरने वाली तथा गागर में सागर भरने वाली अलंकारों से समन्वित अनमोल कविता की भरमार है। उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकारों का अधिक प्रयोग बिहारी ने किया है।

“जदपि सुजाति सुलच्छनि सुवरन सरस सुवृत्त।

भुषण बिनु न विरजहि कविता वनिता मित्त॥”

उपर्युक्त केशवदास जी का दोहा, बिहारी कविता माधुरी अतिशयोक्ति का यह दोहा, बिहारी लाल की भाव पटिमा, मनोहर सौकुमार्य का वर्णन तथा नाइका की शोभा का वर्णन चित्रित करता है। बिहारी की अलंकार योजना व्यापक है। कोमलांगी नाइका तन पर भूषणों का भार कैसे सम्भाल सकती है। उसके पाँव तो पहले ही शोभा के भार से डगमगा रहें हैं। इस प्रकार की भावना कुशल कवि ही कर सकता है।

"भूषन-भार संभारिहै, क्यों इहि तन सुकुमार।

सूधे पाइ न घर परै सोभा ही कैं भार॥”

उपमान के सहारे अनूठी-अनूठी चित्रात्मक अप्रस्तुत योजना का सौन्दर्य उत्प्रेक्षा के द्वारा अंकित हुआ है।

“चमचमात चंचल नयन, बिच घूँघट पर झीन।

मनहु सुर सरिता - बिमल जल उछरत जुग मुनि॥"

विरोधाभास के चमात्कार में कविवर बिहारी तंत्रीनाद कविता की मांधुरी रस युक्त संगीत और रति के श्रृंगार में डूबने वालों का जीवन धन्य बताते हैं।

"तंत्री - नाद कवित- रस सरस राग, रति रंग।

अनचूड़े बूडे तरे जे बूड़े सब अङ्ग॥"

9. भाषा - शैली : :

बिहारी की भाषा व्रज है। अन्य भाषाओं के शब्द प्रयोग भी बिहारी ने किया है। बिहारी ने तत्कालीन प्रचलित साहित्य ब्रज का प्रयोग किया है। भाषा को कहीं-कहीं उन्होंने तोड- मरोड़कर दोहों में जमाया है। संस्कृत शब्दों का समाहार भी बिहारी 7 में प्राप्त होता है। अरबी और फारसी शब्दों का प्रयोग भी बिहारी ने किया है।

बिहारी की भाषा शैली माधुर्य गुण प्रधान है। शब्द चधन तथा मुहावरों लोकोक्तियों के प्रयोग ने भाषा-1 शैली को सुसज्जित किया है। कभी कहीं व्याकरण संबन्ध कुछ इने गिने दोष भी कुछ पण्डित बिहारी में ढूँढ़ने का प्रयत्न करते हैं। - बिहारी की भाषा सशक्त, चुस्त प्रवाहपूर्ण साहित्यिक ब्रज है। उनकी वाक्य रचना व्यवस्थित और शब्द चयन अनूठा है। समास शक्ति वाग्विदग्ध अलंकारों का समावेश बिहारी की भाषा शैली के परिपोषक हैं।

10. उपसंहार :

रीति कालीन कविरत्न बिहारी लाल अपनी सतसई के कारण विख्यात हुए। किसी भी कबि की मान्यता उनकी रचनाओं की गणना से न होकर उनके गुण विशेष से होती है। बिहारी की सतसई मुक्तक बना बनाया दोहों का गुलदस्ता है। अनुभावों तथा भावों की योजना में रीति कालीन कवियों में बिहारी ताल बेजोड़ हैं। शोभा, सुकुमारता, बिरह ताप, बिरह की क्षीणता आदि के वर्णन में बिहारी ने कहीं-कहीं अतिशयोक्ति का आश्रय लिया है। उनके बहुत से दोहे आर्या सप्तशती तथा गाथा सप्तशती की छाया लेकर बने हुए है। बिहारी की कविता में श्रृंगार रस की अधिकता होने पर भी अनुभूति की गहनता नहीं।

अनुभावों का बिहारी ने विशद वर्णन किया और भाव संकेतों का कलात्मक नियोजन भी किया। प्रतिभा, निपुणता और अभ्यास तीनों का बिहारी की कला में योगदान है। कहने की आवश्यकता नहीं कि बिहारी रीति कालीन मूर्धन्य कवि हैं। उनका हर शब्द रस व्यंजित है। गागर में सागर भरने वाला, बिन्दु में सन्धु भरने वाला तथा रीतिकालीन श्रृंगार का उत्कृष्ट कवि है, बिहारीलाल।

प्र.2. बिहारी की श्रृंगारी भावना (या) कला पर लेख लिखिए।

रूपरेखा :

1. प्रस्तावना

2. रीति काव्य के लक्षण

3. श्रृंगार का शास्त्रीय स्वरूप

4. श्रृंगार की व्यापकता

5. संयोग पक्ष

6. नख शिख वर्णन

7. सौन्दर्य

8. उद्दीपन

9. वियोग पक्ष

10. उपसंहार

1. प्रस्तावना :

श्रृंगारी काव्य रचना परम्परा में बिन्दु में सिन्धु और गागर में सागर भरनेवाले रीतिकालीन मूर्धन्य कवि बिहारीलाल का महत्वपूर्ण स्थान है। बिहारी सतसई भावपक्ष तथा कलापक्ष दोनों में अत्यधिक लोक रंजक बन गई है। कहा जाता है कि - वे आचार्य केशवदास के पुत्र हैं। उनकी पत्नी भी एक कुशल कवयत्री थी। वे राजाओं के और सामन्तों के दरबारों में कुछ श्रृंगार परक तथा अन्य दोहे सुनकर पुरस्कार तथा दक्षिणा प्राप्त करते थे। एक बार जयपूर के राजा जयसिंह नई चौहान रानी से विवाह करके उसी के साथ भोग - विलास में डूबै हुए थे। बिहारी ने -

"नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।

अली कली ही सो बाँध्यों, आगे कौन हवाल॥"

राजा जयसिंह इस दोहे का प्रतीका समझ गये। उन्होंने बिहारी का अपने दरबार में कवि के रूप में सम्मान किया। जीवन पर्यान्त बिहारी वहीं रहें और अपने रसिकतापूर्ण वैविध्य दोहों से दरबार को रंजित करते रहे।

2. रीतिकाव्य के लक्ष्ण :

रीति शब्द संस्कृत, साहत्यि शास्त्र में एक विशिष्ट स्थान रखता है। रीति संप्रदाय के नाम पर यह सिद्धान्त आचार्य वामन के द्वारा प्रयुक्त हुआ। संस्कृत के काव्यों का मार्ग ही रीति शब्द का अर्थ बताया गया - तत्र तस्मिन् काव्ये मार्गा। मतिराम, देव, सुरति मिश्र, सोमनाथ आदि ने रीति शब्द का प्रयोग किया है। डॉ. भगीरथमिश्र के अनुसार रीति शास्त्र का तात्पर्य अलंकार, रस, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि के स्वरूप भेद आदि से समन्वित ग्रन्थ है। रीतिकाल का नामकरण कुछ विद्वानों के अनुसार श्रृंगार और अलंकार से सम्बन्धित है। बिहारी सतसई श्रृंगाररस प्रधान काव्य है। यह मुक्तक काव्य है। भाषा, अलंकार, शब्द योजना तथा समास शक्ति के आधार पर भाव आम्भीर्याथ विम्बयोजना के कारण एक उक्ति प्रचार में है।

“सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।

देखन में छोटे लगें घाव करें गम्भीर||"

3. श्रृंगार का शस्त्रीय स्वरूप :

श्रृंगार 'रसराज' कहलाता है। लौकिक भाषा में प्रेमही श्रृंगार है। प्रेम की व्यापक भावना श्रृंगार रस है।

'श्रृंग' का अर्थ है - कामोद्रेक और 'आर' का अर्थ है - लानेवाला । अतः कामोद्रेक लानेवाला श्रृंगार कहलाता है। इस में स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव उपकरण हैं। स्थायी भाव ही रति है। यह नर नारी के अनुराग को प्रकट करता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विभाव और संचारी भाव मानसिक पक्ष कहलाते है और अनुभाव शारीरिक पंक्ष।

4. श्रृंगार की व्यापकता :

गाथा सप्तशती, अमरुक शतक, आर्या सप्तशती आदि ग्रन्थों से बिहारी को भावप्रेरणा प्राप्त हुई। विलक्षण कल्पना, सूक्ष्म निरीक्ष्ण तथा अनुपम प्रतिभा की तूलिका से बिहारी ने सतसई में श्रृंगारी भावना को परिपुष्ट किया। बिहारी लाल संस्कृत के भी विद्वान होने के कारण अग्नि पुराण आदि ग्रन्थों का प्रभाव भी उन पर पडा। परखने पर पता चलता है कि विहारी पर कालिदास की भी छाप है। प्रेम पयोधि में पहाड़ों से भी ऊँचे रसिकों के मन डूब जाते हैं।

"गिरि तैं ऊँचे रसिक मन, बूड़े जहाँ हजारू।

वहै सदा पशु नरनु कौं प्रेम - पयोधि पगारू॥"

इस के विपरीत नर रूपी पशु प्रेम रूपी सागर को कोई गढ़ा समझते हैं। तंत्रीनाद, कविता - रस, सरस राग और रति रंग में डूबने वालों का जीवन सफल बताया गया है।

"तंत्री - नाद कवित्त - रस सरस राग रति-रंग।

अन बूड़े बूड़े तरे जे बूड़े सब अङ्ग॥"

सत्य और काव्य दोनों एक ही वस्तु हैं। काव्य की जीवन धारा सत्य है। कवि सच्चा शिक्षक है।

"अली कली ही सो बाँयों आगे कौन हवाल।"

उक्ति के द्वारा बिहारी ने श्रृंगार का अनौचित्य रूप प्रस्तुत करके राजा जयसिंह के नेत्र खोल दिये और राजा को कार्योन्मुख किया।

5. संयोग पक्ष : :

संयोग पक्ष में आलम्बन, आश्रय आदि होते हैं। हास्य तथा विनोद के साथ प्रेमियों के नाना प्रकार की क्रीडाएँ होती हैं। साहित्य शास्त्र में संयोग की पृष्टभूमि पूर्वराग है। सौन्दर्य छवि से उन्मन्त नाइका का पूर्वराग देखिए -

"डर न टरै, नींद न परै हरै न काल बिपाकु।"

इसी प्रकार बिहारी सद्यः स्नाता का मनोहर रूप हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं।

"छुटी न सिसुता की झलक, झलकौ जोवन अंग।"

यौवन का उभार कविवर बिहारी विम्बात्मकता के साथ प्रस्तुत करते है।

"दुरत न कुच बिच कंचुकी चुपरीः सारी सेत।"

6. नख शिख वर्णन : :

नख - शिख वर्णन काव्य का एक प्रधान अंग है। चाहे महाकाव्य हो या खण्ड काव्य हो नाइका का नख - शिख वर्णन किसी किसी रूप में प्रस्तुत होता ही रहता है। बिहारी वस्तुतः श्रृंगारी कवि होने के कारण नाइका के सौन्दर्य वर्णन - न - में अत्यन्त प्रमुख तथा सफल हुए हैं। उदाहरण के लिए नाइका का मुख वे 'आनन ओप उजास' कहते हैं। नाइका की दृष्टि पर वे कलम चलाते हैं।

"भौंह उँचै आँचरु उलटि मौरि मोरि मुँहु मोरि ।

नीठि नीठि भीतर गई, दीठि दीठि सौं जोरि ॥"

7. सौन्दर्य :

नख शिख वर्णन करना एक प्रकार से कवि परंपरा (Treadition) है। लेकिन नाइका के सौन्दर्य जगत को पाठक के सामने मनोहर रूप में चित्रांकित करना सच्चा कवि कर्म है।

कवि की प्रतिभा में विद्वत्ता के साथ-साथ भावना तथा काल्पनिक वैविध्य होना चाहिए। क्षण क्षण बदलते हुए नाइका का सौन्दर्य विशेष बिहारी अनुपम ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

"लिखन बैठि जाकी सबी, गहि गहि गरब गरूर।

भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर।"

बिहारी लाल के इस सौन्दर्य वर्णन पर महाकवि माघ कृत.-

'क्षणे - क्षणे यन्नवतामुपैति, तदेक रूप रमणीयतायाः' का प्रभाव है। संयोग के अन्तर्गत बिहारी ने जलक्रीडा, आँख मिचौनी, झूला झूलना, फाग खेलना आदि सभी प्रकार की विलास केलियों का वर्णन किया है।

8. उद्दीपन :

उद्दीपन का श्रृंगार रस में महत्त्वपूर्ण स्थान है। आलम्बन की चेष्टाएँ उद्दीपन मानी जाती हैं। ऋतु वर्णन में भिन्न - भिन्न ऋतुओं से संबन्धित त्योहारों का भी वर्णन किया जाता है। निम्न लिखित वसन्त चित्र में उद्दीपन की मात्रा देखिए।

"छकि रसाल - सौरभ सने मधुर माधुरी गंध।

ठौर-ठौर झौंहत झपत भौर झौर मधु अंध॥"

विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों से बिहारी की 'सतसई' सचमुच श्रृंगार रस का 'सदन' बन गयी है। संयोग श्रृंगार का एक दोहा अवलोक करें

"चमक तमक हाँसो ससक मसक झपट लमटानि।

ए जिहि रति सो रति मुक्ति और मुकति अति हानि॥"

9. वियोग पक्ष :

संयोग में कवि नायक तथा नाइका के बाह्य पक्ष तक ही सीमित रहता है। वियोग पक्ष में अधिकांश कवियों की मर्म वेदना प्रकट होती है। नायक और नाइका को आलम्बन बनाकर कवि अपनी अन्तर्वेदना प्रकट करता है। वियोग श्रृंगार में आत्म प्रसार होता है। अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण, कंपन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जडता और मरण वियोग के फल माने जाते हैं। सतसई के दोहों का शब्द - शब्द और अक्षर - प्रत्यक्षर वियोग श्रृंगार के लिए भरमार है। नाइका का हृदय पसीज - पसीज कर नेत्रों में आँसू के द्वारा बहता है।

"हियौ पसीजि पसीजि हाय, द्दग द्वार बहत है"

वियोग पक्ष में बिहारी लाल अधिकांश अतिशयोक्ति को आधार बनाते हैं। विरहणी नाइका पर डाला जाने वाला गुलाब जल बीच में ही भाप बनकर जाता है। उसी प्रकार वियोग व्यथा से व्याकुल तथा कृशित नाइका साँस के साथ आगे और पीछे चली।

"औंधाई सीसी सुलखि बिरह बरनि बितलात।

नहीं सूखि गुलाबु गौ छींटौ छई न गात॥"

"इति आवति चलि जाति उत, चली छसांतक हाथ । चढ़ी हिंडोरै सै रहै लगी उसासनु साथ॥"

वियोग में पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करुणा के स्तर होते हैं। प्रवास के समय नाइका पियतम के निरीक्षण में व्याकुलपूर्ण जीवन बिताती है। विरह व्यथिता नाइका को कभी-कभी नायक से पत्र मिलता है तब नाइका उस पत्र को झूम झूम कर तथा चूम चूम कर हृदय पर लगा लेती है।

"कर लै चूमि चढ़ाइ सिर, उर लगाइ, भुज, भेंटि।

लहि पाती पिय की लखति बाँचति धरति समेटि॥"

बिहारी की नाइका प्रियतम को पत्र लिखना चाहती है, लेकिन कागज पर अक्षर लिख न पाती वह जिस कागज का स्पर्श करती है उस की विरहाग्नि के कारण वह पत्र जल जाता है। इसलिए वह पत्र लिख न पाती। कभी-कभी व्यक्ति के द्वारा सन्देश भेजना चाहती हो (होगी) संस्कार के कारण वह शर्माती है। इसी लिए वह कह देती है कि मेरे हृदय की बात उसका (नायक का) हृदय जानता है।

कागद पर लिखत न बनत, कहत संदेसु लजात।

कहिंहै सबु तेरौ हियौ, मेरे हिय की बात॥

10. उपसंहार :

श्रृंगार रस संसार में हर जीव के लिए अनुभवगम्य है। इस में अतुलित आनन्द की प्राप्ति होती है। बिहारी लाल रीतिकालीन श्रृंगार रस के सम्राट हैं। लेकिन श्रृंगार रस पोषण शब्द चयन के साथ ही अधिक हुआ है। प्रधानतया वियोग श्रृंगार में वियोग जन्य भाव गंभीरता बिहारी जायसी और तुलसी के समकक्ष नहीं कर सके। विरहणी

नाइका के अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन में कभी हँसी मजाक आ गया है। अधिक ऊहात्मकता के कारण वियोग वर्णन में कहीं-कहीं अस्वभाविकता आ गई है।

घनानन्द

प्र.1. घनानन्द की काव्य-कला की समीक्षा कीजिए।

(अथवा)

घनानन्द की प्रेमाभिव्यंजना

(अथवा)

घनानन्द की काव्य - साधना पर प्रकाश डालिए।

१ रूपरेखा :

1. प्रस्तावना
2. कृतियाँ
3. रीति मुक्त धारा (या) कवि
4. घनानन्द की विशेषताएँ
5. एकनिष्ठता
6. विरह - मिलन का आदर्श
7. प्रकृति से सम्बन्ध
8. अनुभूति तथा अभिव्यक्ति का सामंजस्य

9. भाषा - शैली

10. उपसंहार

1. प्रस्तावना :

रीतिमुक्त कवि, ब्रजभाषा प्रवीण, विरह विदग्ध वियोगी कवि घनानन्द का नाम रीति काल में ही नहीं, बल्कि समूचे हिन्दी साहित्य में अप्रमेय है।

घनानन्द दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले के मीर मुंशी थे और दरबार की एक वेश्या सुजान पर अनुरकत थे । बादशाह के कहने पर एक बार इन्होंने गाने से मना कर दिया पर सुजान के कहने पर ये बादशाह की ओर पीठ करके अपनी प्रिया के सम्मुख हो गाने लगे। घनानन्द ने ऐसा गाना गाया कि सब लोग तन्मय हो गए। बादशाह इन के गाने पर जितना ही खुश हुआ उतना ही बे अदबी पर नाराज हो इन्हें शहर से निकाल दिया। जब वे चलने लगे तब सुजान को भी साथ चलने के लिए कहा। पर वह न गयी। इस पर घनानन्द हृदयव्यथित हो गये और बे वृंदावन जा कर विरक्त भाव से रहने लगे। इन्होंने अपने काव्य में परमात्मा के स्थान पर स्वत्र सुजान शब्द का प्रयोग किया है।

2. कृतियाँ : -

घनानन्द की कृतियाँ इक्तालीस बताई जाती हैं। लेकिन उन में आज सत्रह (17) कृतियाँ मात्र प्राप्त हैं। उन में घनानन्द - कवित्त, आनन्दघन के कवित्त, कवित्त सुजान हित, वियोग बेलि जमुना जस, सुजान विनोद आदि प्रधान काव्य हैं।

3. रीतिमुक्त धारा कवि :

रीतिकाल श्रृंगार काल भी कहलाता है। इस में प्रधानतः दो धाराएँ प्राप्त होती हैं -

1. रीतिबद्ध काव्य धारा और

2. रीतिमुक्त काव्य धारा

रीतिमुक्त काव्य धारा में शुद्ध प्रेम काव्य होते हैं। घनानन्द, बोधा, आलम और ठाकुर इस धारा के अन्तर्गत आते हैं। रीतिबद्ध कवि नाइका भेद, नख - शिख वर्णन, ऋतु वर्णन आदि विषयों को लक्ष्य बनाकर काव्य का सृजन करते हैं। जूठी उक्तियाँ, कल्पनायें, भ्रष्टप्रेम आदि रीतिबद्ध कवियों में होते हैं।

अन्तर्मथन, आत्मपीडा, स्वानुभूति, आत्म निवेदन, उन्मुक्त प्रेम, वेदना की कसक आदि रीतिमुक्त कवियों की रसधारा है । वे भावविभोर होकर स्वच्छन्द रूप में कविता की लहरों में पल्लवित होते रहते हैं। उन कवियों का हर एक शब्द उनके हृदय की निचोड है। घनानन्द का नाम स्वच्छन्द धारा के कवियों में सर्वोत्तम (सब से ऊँचा) है। वे वियोग रीति के कोविद तथा व्रज भाषा प्रवीण माने जाते है।

"नेही महा ब्रज भाषा प्रवीण और सुन्दरतानि के भेद को जानै।

जोग-वियोग की रीति में कोविद भावना भेद- स्वरूप को ठानै॥"

4. घनानन्द की विशेषताएँ :

घानान्द का प्रेम हृदयगत है। अतः उनकी कविता का सार 'प्रेम की पीर है"। यहाँ पीर का अर्थ पीडा और भगवान दोनों हैं। प्रेम की यह पीडा स्वानुभूति है और उसका उद्गाम हृदय से है। वें हृदय रूपी आँखों से देखते हैं हिय - आँखिन । घनानन्द संयोग तथा वियोग का विधान समझनेवाले सुकवि हैं। उनका प्रेम

भावपक्ष अधिक होने के कारण उनका काव्य जग की कविताई बन गया है। कोई भी कवि विद्वात्ता के साथ - साथ विविध भाषाओं का ज्ञान तथा विलक्षण काव्य पा का ज्ञान रखता है। घनानन्द को अनेक भाषाओं का ज्ञान था।

5. एकनिष्ठता :

घनानन्द ने संयोग वर्णन और वियोग वर्णन दोनों पर लिखा है। लेकिन प्रधानतः वे वियोग के कवि हैं। चातक के प्रेम की एकनिष्ठता घनानन्द में भी व्यक्त होती है।

"चितव कि चातक मेघ तजि कबहु दूसरी ओर।"

चातक के मेघ के प्रति प्रेम की भाँति ही घनानन्द का प्रेम सुजान के प्रति सच्चा है। अनुभूतियाँ, आकांक्षाएँ, मनोवृत्तियाँ और करुणा धनीभूत होकर उनकी कविता में संगीत के रूप में स्वाभावकिता के साथ बरसती हैं। व्यथा की नीली लहरें उनके रस हृदय को कल्लोलित करती हैं।

6. विरह मिलन का आदर्श :

वियोग वर्णन तो हर कवि करता ही रहता है। लेकिन वियोग पीडा में जीव का मरना ही अधिक कवियों ने बताया है। घनानंद सुजान की बिरह के कारण मरते नहीं बल्कि वे सुजान की बिरह वेदना में क्षण क्षण जीते हैं। मछली के बिछुडन और पतंग के मिलने की दशा से घनानन्द के बिरह की दशा में बहुत अन्तर है। वे स्वयम कहते हैं

"बिछुरै मिलै मीन पतंग दसा कहा मो जियकी गति को परसे"

वे अपने प्रिया क्रूर, अत्याचारी, निठुर, निर्मम, निर्दयी आदि उपाधियों से कोसते हैं, अपने भाग्य पर क्षण -प्रति क्षण व्यथित होते रहते हैं। वियोगी के मन की दशाओं

का मार्मिक तथा व्यापक उद्‌घाटन जैसा विरह व्यथित भावनाप्रद कविवर घनानन्द ने किया है वैसा कम ही कवि कर सक्ते।

7. प्रकृति से सम्बन्ध :

मनुष्य का प्रकृति से परंपरागत सम्बन्ध है। प्रकृति मानव के सुख-दुख में सहचरी है। मानव जीवन में प्रकृति आदयन्त माँ अथवा सहचरी के रूप में रहती है। हर कवि अपने काव्य में हर दशा में प्रकृति का वर्णन करता जाता है। अतः संयोग और बियोग में कवि प्रकृति के उद्दीपन रूप को ले लेते हैं। घनानन्द ने रसपुष्ट (रसनिष्ठ) कवि होने के कारण बाहय प्रकृति के साथ अन्तः प्रकृति का वर्णन किया है। कभी रात्री उनको भयंकर तथा विषपूर्ण नागिन सी लगती है। चान्दिनी अग्नि के समान उनको दहती है और वर्षा की बून्हें उनको जलाती है।

"सुधा ते स्रवत विष, फूल में जमत-सूल।

तम उगलित चन्द भई नई रीति॥"

कोयल की कूक, चातक की पुकार और मयूर का नृत्य घनानन्द के विरह व्यथितय को और भी आघात पहुँचाते हैं।

"कारी कूर कोकिला कहाँ को बैर काढ़ति री,

कूकि कूकि अब ही करे जो किन कोरि लै।

पैडे परे पापी ये कलापी निस घास ज्यौं ही

चातक! धातक त्यौं ही तू हू कान फोरि लै ॥"

आखिर घनानन्द मेघों से बरसने वाली वर्षा को अपने विरह ह्रदय के आँसू बताते हैं।

"बूँदै न परति मेरे जान जान प्यारी तेरे।

बिरही कौं हरि मेघ आँसुनि झरयो करै॥"

दामिनी भी उनके लिए उद्दीपन का काम करती है।

"दामिन हूँ लहकि बहकि यौं जरयो करै।"

8. अनुभूति तथा अभिव्यक्ति का सामंजस्य :

घनानन्द प्रधानतया अनुभूति परक कवि हैं। उनकी हृदयानुभूति ललित अभिव्यक्ति में प्रकट हुई है। हृदय की सूक्ष्म भावनाऐं, रमणीय अभिव्यक्ति हृदय की अंन्तर्दशाओं का चित्रण आदि घनानन्द में मूर्तिमत्ता के साथ प्रकट होते हैं। घनानन्द का अभिव्यंजना कौशल निरुपम है।

9. भाषा - शैली :

घनानन्द की भाषा साहित्यिक, व्याकरण सम्मत, मुहावरेदार, लाक्षणिक युक्त और व्यंजना (हृदय ग्राह्य) प्रधान है। रीतिबद्ध कवियों में बहुत कम कवि घनानन्द्र के समकक्ष ठहर सकते हैं। घनानन्द की भाषा पद- ध्वनि तथा वाक्य- ध्वनि के साथ हृदय नाद करती है और पाठकों (या) (पाठक गणों) से हृदय नाद कराती है। भावना के वेग में उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, रूपक, उपमा, विरोध आदि अलंकारों का समावेश हुआ है।

10. उपसंहार :

घनानन्द व्रज भाषा प्रवीण हैं । वे रीतिमुक्त स्वच्छन्द मनोवृत्ति बाले कवि हैं। विरह की अन्तर्दशाओं और अन्तर्वृत्तियों के वर्णन में वे अप्रमेय हैं । उनके एक - एक शब्द में विरह - विह्वल हृदय बोलता है। अनुभूति की तीव्रता तथा वेदना की

गहराई और व्यथा की कसक उनके काव्य के 'काव्य की आत्मा' है। साहित्यिक प्रांजल व्रज भाषा में लाक्षणिकता तथा पूर्ण व्यंजकता के वैभव में घनानन्द की कविता मनोहरता के साथ ढ़लती है। उनकी भाषा व्याकरण संपन्न तथा अर्थ समन्वित है। भाव, भाषा और काव्य की रसपुष्टि में घनानन्द का रस हृदय छलकता रहता है।

अतिरित विषय केलिए यह लिंक दबाईये -

https://www.thehindiacademy.com/p/blog-page_16.html

(103HN21)

M.A. DEGREE EXAMINATION, APRIL 2022.

First Semester

Hindi

Paper III — OLD AND MEDIEVAL POETRY

Time : Three hours Maximum : 70 marks

प्राचीन एवं मध्यकालीन कविता?

प्रथम प्रश्न अनिवार्य है।

शेष प्रश्नों से किन्हीं चार प्रश्नों के उत्तर दीजिये।

1. संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए। $(4 \times 7\frac{1}{2} = 30)$

(a) (i) सतगुरू ऐसा चाहिए जैसा सिकलीगर होई।
सबक मसकला फेरि करि देह द्रपन करे कोई।

अथवा

(ii) मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँई परैं, स्यामु हरित हुति होय।

(b) (i) खेलत मानसरोवर गई, जाइ पाल पर ठाढ़ी भई।
देखि सरोवर रहसहिं केली, पदमावति सौंहहिं सहेली
ए रानी मन देखु विचारी, गुहि नैहर रहना दिन चारी
जो लगि अहै पिता कर राजू, खेलि लेहु जो खेलहु आजु
पुनि सासुर हम गवनब काली, कित हम कित यह सखर पाली

कित आवन पुनि अपने हाथाँ, कित मिलि के खेलन एकसाथाँ
सासुननद बोलिन्ह जिउ लेहीं दारून ससुर न निसरै देहीं
पिउ पिआर सिर ऊपर, सो पुनि केरै दहँ काह
दहु सुख राखै की दुख, दहुँ कस जनम निबाह।

अथवा

(ii) सरवर तरि पदुमिनी आई। खोंपा छोरि केस मोरकाई।
ससि मुख अंग मलैगिरी रानी। नागन्ह झाँपि लीन्ह अरधानी
ओनए मेघ परी जम छाँह। ससि को सरन लीन जनु राहाँ
छपि गै दिनहि भानु के दशा। लै निसि लखल चाँद परगसा।
भूलि चकोर दिस्टि तहँ लावा। मेघ घटा महँ चाँद देखावा।
दसन दामिनी कोकिल भाषी। मौं हैं धनुक गगन लै शखी।
नैन खोजन हुई केलि करेहीं। कुच नारैंग मधुकर रस लेहीं।
सखर रूप विमोहा हिएँ हिलोर करेइ।
पाय धुअइ मकु पावों तेहि निसु य हरै देई।

(c) (i) सिखत चलन जसोवा मैया।
अरबराई करि पानि गहावति, डगमगाइ घरनी घरै पैया।
कबदुँक सुन्दर बदन बिलोकति, उर आनंद भरि लेत बलैया।
कबदुँक कुल देवता मनावति, चिरजीवहु मेरों कुँवर कन्हैया।
कबदुँक बल कौ टेरि बुलावति, इहि आँगन खेलहु दोऊ भेया
'सूरदास'-स्वामी की लीला, अति प्रताप बिलसत नैदरैया।

अथवा

(ii) निर्गुन कौन देस की बासी?

मधुकर हंसि समुझाय सौंह दै, बूझति साँच न हाँसी।

को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि को दासी।

कैसो बरन भेष है कैसो के हि रस को अभिलाषी

पावेगौ पुनि कियो आपनो, जो रे कहैगो गाँसी।

सुनत मौन है रहनों ठगो सो सूर सबै मतिनीसी।

(d) (i) स्वारथु सुकृत न स्त्रमु बृथा, देखि बिहेग बिचारि।

बाज पराये पानि पर, तू पच्छीनु न मारि।

अथवा

(ii) लाख लाख भाँविन की दुसह दसनि जानि

साहस सहारि सिए ओर लौ चलाय हौं।

ऐसे धनानंद गहि है टेक मन माहिं;

ऐसे निरदई। तोहि दया उपजाय हों।

2. (a) पृथ्वीराज रासो कृत ''पद्मावती समय'' की वस्तुगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।

अथवा

(b) पद्मावत में भारतीय संस्कृति तथा लोक जीवन के रूप पर प्रकाश डालिये।

3. (a) कबीर की काव्य प्रतिभा पर प्रकाश डालिये।

अथवा

(b) जायसी की काव्य प्रतिभा, दर्शन के बारे में लिखिये।

4. (a) लोक नायक के रूप में तुलसी के महत्व को निरूपित कीजिए।

अथवा

(b) धनानंद की काव्य प्रतिभा और विप्रलंभ श्रृंगार पर प्रकाश डालिये।

5. (a) किन्हीं दो पर टिप्पणियाँ लिखिये।

(i) कबीर का रहस्यवाद

(ii) सूफी सिद्धांत और रहस्यवाद

(iii) तुलसीदास की सांस्कृतिक चेतना

(iv) बिहारी की श्रृंगारिकता

अथवा

(b) किन्हीं दो पर टिप्पणियाँ लिखिये।

(i) घनानंद के काव्य का कलापक्ष

(ii) सूफी सिद्धांत और रहस्यवाद

(iii) तुलसी का लोकनायकत्व

(iv) बिहारी की श्रृंगारिकता

103HN21

ORIGINALITY REPORT

3%	2%	0%	1%
SIMILARITY INDEX	INTERNET SOURCES	PUBLICATIONS	STUDENT PAPERS

PRIMARY SOURCES

1	anucde.info Internet Source	1%
2	archive.org Internet Source	<1%
3	Submitted to University of Mumbai Student Paper	<1%
4	Submitted to Odisha State Open University Student Paper	<1%
5	collegecirculars.unipune.ac.in Internet Source	<1%
6	Submitted to Central University of Gujarat Student Paper	<1%
7	Submitted to Mauritius Institute of Education Student Paper	<1%
8	Submitted to Rhodes College Student Paper	<1%
9	assets.vmou.ac.in Internet Source	<1%

10	www.wikiind.com Internet Source	<1 %
11	Submitted to Oberoi International School Student Paper	<1 %
12	Submitted to Management Development Institute Student Paper	<1 %
13	Submitted to California Virtual Campus Region IV Student Paper	<1 %
14	Submitted to Central University of Himachal Pradesh, Dharamshala Student Paper	<1 %
15	Submitted to Institute of Infrastructure Technology Research and Management - IITRAM Student Paper	<1 %
16	Submitted to Lovely Professional University Student Paper	<1 %
17	Submitted to The University of the South Pacific Student Paper	<1 %

Exclude quotes Off Exclude matches Off

Exclude bibliography Off

103HN21

GRADEMARK REPORT

FINAL GRADE	GENERAL COMMENTS
/0	

PAGE 1

PAGE 2

PAGE 3

PAGE 4

PAGE 5

PAGE 6

PAGE 7

PAGE 8

PAGE 9

PAGE 10

PAGE 11

PAGE 12

PAGE 13

PAGE 14

PAGE 15

PAGE 16

PAGE 17

PAGE 18

PAGE 19

PAGE 20

PAGE 21

PAGE 22

PAGE 23

PAGE 24

PAGE 25

PAGE 26

PAGE 27

PAGE 28

PAGE 29

PAGE 30

PAGE 31

PAGE 32

PAGE 33

PAGE 34

PAGE 35

PAGE 36

PAGE 37

PAGE 38

PAGE 39

PAGE 40

PAGE 41

PAGE 42

PAGE 43

PAGE 44

PAGE 45

PAGE 46

PAGE 47

PAGE 48

PAGE 49

PAGE 50

PAGE 51

PAGE 52

PAGE 53

PAGE 54

PAGE 55

PAGE 56

PAGE 57

PAGE 58

PAGE 59

PAGE 60

PAGE 61

PAGE 62

PAGE 63

PAGE 64

PAGE 65

PAGE 66

PAGE 67

PAGE 68

PAGE 69

PAGE 70

PAGE 71

PAGE 72

PAGE 73

PAGE 74

PAGE 75

PAGE 76

PAGE 77

PAGE 78

PAGE 79

PAGE 80

PAGE 81

PAGE 82

PAGE 83

PAGE 84

PAGE 85

PAGE 86

PAGE 87

PAGE 88

PAGE 89

PAGE 90

PAGE 91

PAGE 92

PAGE 93

PAGE 94

PAGE 95

PAGE 96

PAGE 97

PAGE 98

PAGE 99

PAGE 100

PAGE 101

PAGE 102

PAGE 103

PAGE 104

PAGE 105

PAGE 106

PAGE 107

PAGE 108

PAGE 109

PAGE 110

PAGE 111

PAGE 112

PAGE 113

PAGE 114

PAGE 115

PAGE 116

PAGE 117

PAGE 118

PAGE 119

PAGE 120

PAGE 121

PAGE 122

PAGE 123

PAGE 124

PAGE 125

PAGE 126

PAGE 127

PAGE 128

PAGE 129

PAGE 130

PAGE 131

PAGE 132

PAGE 133

PAGE 134

PAGE 135

PAGE 136

PAGE 137

PAGE 138

PAGE 139

PAGE 140

PAGE 141

PAGE 142

PAGE 143

PAGE 144

PAGE 145

PAGE 146

PAGE 147

PAGE 148

PAGE 149

PAGE 150

PAGE 151

PAGE 152

PAGE 153

PAGE 154

PAGE 155

PAGE 156

PAGE 157